प्रकाशक :
राजस्थान खादी संघ
खादीबाग, जयपुर ।

मई १९५८ ई०
मू० ७५ नये पैसे

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर ।

संतकृपा झाली । इमारत-फळा आली ॥
ज्ञानदेवें रचिला पाया । उभारिलें देवालया ॥
नामा तयाचा किंकर । तेणें रचिलें तें आवार ॥
जनार्दन एकनाथ । खांब दिधला भागवत ॥
तुका झालासे कळस । भजन करा सावकाश ॥
बहिणा म्हणे फडकती ध्वजा । निरूपणां केलें वोजा ॥

संत कृपा हुई और भागवत धर्म (भक्तिमार्ग) की इमारत खड़ी हुई। ज्ञानदेव ने उसकी नींव रखी और मंदिर खड़ा किया (अद्वैत भक्ति पर अधिष्ठित भागवत धर्म की ध्वजा पहले ज्ञानदेव ने फहराई।) उनका किंकर नामदेव ने दीवार खड़ी की। (नामदेव के करीब चौपन वर्ष भागवत धर्म के प्रसार में बीते। वे भागवत धर्म का झण्डा उत्तर में ले गये)। जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथ ने 'भागवत' ग्रंथ की रचनाद्वारा भागवत धर्म की इमारत को आधारस्तंभ दिया। तुकाराम उस भवन के कलशस्वरूप हुए। अब सब शांति से भजन करें। बहिणा कहती है—भागवत धर्म की ध्वजा फहरा रही है। इससे परमार्थ सुलभ हुआ है।

परिचय

श्रद्धेय श्री शंकरराव देव गतवर्ष अक्तोबर मास में राजस्थान के लंबे दौरे पर आये थे और साथ में श्री वृंदा अभ्यंकर भी थीं। वे लगभग तीन सप्ताह तक विद्यालय में ठहरे। यहीं राजस्थान के दस-बारह जिलों के रचनात्मक कार्यकर्ता उनके पास आये और एक एक सप्ताह रहे। इस अवधि में समाज हित के अनेक प्रश्नों पर जिज्ञासु तथा शोधक वृत्ति से लंबी चर्चायें हुई और शरीर श्रम की साधना का कार्यक्रम भी नियमित रूप से तथा निष्ठापूर्वक चला। स्वाध्याय और सहचिंतन का सभी लोगों के मानस पर बहुत अच्छा असर पड़ा और एक दूसरे के निकट आने तथा एक दूसरे को समझने के इस प्रयत्न से स्नेह बढ़ा और श्रद्धा बलवती हुई।

इस शिविर में सामूहिक प्रार्थना के समय प्रतिदिन वृंदा बहन संत तुकाराम का एक भजन गाती थीं और उसका हिन्दी भावार्थ भी कहती थीं। तुकाराम की भक्तिपूर्ण वाणी बहुत पसंद आती थी। मैं ने श्रद्धेय दादा के सामने यह विचार रखा कि संत तुकाराम के लगभग पचास अभंगों का संग्रह उनकी जीवनी के साथ प्रकाशित किया जाय तो मराठी तथा हिन्दीभाषी जनता को निकट आने और पारस्परिक प्रेम-भावना को बढ़ाने में यह बहुत सहायक होगा। साथ ही यह दादा के इस प्रवास की स्मृति का भी अच्छा साधन रहेगा। दादा को यह सुझाव पसंद आया और वृंदा बहन को इस काम में जुटने की सलाह दी।

श्री वृन्दा अभ्यंकर बहुत सरल, उत्साही तथा विद्वान बहन हैं। वे बंबई के महिला विश्वविद्यालय की स्नातिका हैं। उन्होंने इस सेवा-कार्य को उत्साहपूर्वक उठा लिया, तथा परिश्रमपूर्वक पूरा किया। पहले उन्होंने अभंगों का संग्रह किया, उनका मराठी भावार्थ किया, फिर हिन्दी भावार्थ तैयार किया। तुकाराम के संबंध के महत्वपूर्ण साहित्य का उन्होंने अध्ययन किया और मराठी में सारी जीवनी तथा विवेचन लिखा। हिन्दी में उसे लिखने का प्रयत्न किया। यह सारी सामग्री लेकर वे यहां आई और लगभग दो सप्ताह विद्यालय में ठहर कर पुस्तिका तैयार की। इस सारे काम में जितना परिश्रम उन्होंने किया, जो लगन और उत्साह दिखाया उसके लिये वे इन दोनों भाषा-भाषियों की ओर से सराहना की पात्र हैं। इस काम में विद्यालय के उपाचार्य श्री ति. न. आत्रेयजी

और झुंझुनू जिले के जिला निवेदक श्री भवानी भाई का विशेष सहयोग रहा है।

इस पुस्तिका में संत तुकाराम की जीवनी, आध्यात्मिक विकास तथा काव्य साधना का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इसके बाद उनकी गाथा में से चुने हुये पचास अभंग कठिन शब्दार्थ तथा हिन्दी भावार्थ-सहित दे दिये गये हैं। अंत में तुकाराम की हिन्दी रचनाओं के कुछ नमूने तथा महाराष्ट्र में घर-घर प्रचलित कुछ सूक्तियां भी अर्थ सहित शामिल करदी गई हैं।

इस पुस्तिका में चुने हुये अभंग तथा पंक्तियां श्री माधव कृष्ण देखमुख तथा श्री शंकर वामन दाण्डेकर द्वारा संपादित तुकाराम महाराजांची गाथा के १९२५ के संस्करण से ली गई हैं। जीवनी लिखने में पांच संत कवी—शं. गो. तुळपुळे, तुकाराम वचनामृत—रा. द. रानडे, संतांचा प्रसाद—विनोबा और हिन्दी को मराठी संतों की देन—विनय मोहन शर्मा से विशेष सहायता मिली।

यहां मराठी भाषा की ध्वनि संबंधी कुछ विशेषताओं का उल्लेख करना भी आवश्यक है। मराठी में च, ज, और झ का विशेष उच्चारण च़, ज़, और झ़ की भांति है। एक विशेष अक्षर ळ ल से और है। इस का उच्चारण गुजराती, राजस्थानी और दक्षिणी भाषाओं की भांति होता है।

मुझे इस पुस्तिका की तैयारी और प्रकाशन से प्रसन्नता है, यद्यपि इस बात का खेद है कि विविध कार्यों में फंसे रहने के कारण जितना समय और सहयोग इसमें मैं देना चाहता था उतना नहीं दे पाया।

हमारे देश के विभिन्न भाषा-भाषी भाई-बहिनों के पारस्परिक स्नेह-संवर्धन के कार्यक्रम में यह छोटा सा कदम आगे आनेवाले अधिक समर्थ और बड़े कदमों का सूचक होगा ऐसी मेरी आशा है और इसमें विद्यालय का भी अल्प सा योग रहा इसका मुझे संतोष है। इस सारे काम का श्रेय श्रद्धेय दादा की प्रेरणा और वृंदा बहन के उत्साह और परिश्रम को ही है।

खादी ग्रामोद्योग विद्यालय
शिवदासपुरा (जयपुर)
अक्षय तृतीया
२४-४-५८

जवाहिरलाल जैन

प्रस्तावना

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति-अविभक्तं विभक्तेषु—यह भारत की आध्यात्मिक एकता तथा समन्वययुक्त संस्कृति की विशेषता है। यही भारत की आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक विरासत की संपन्नता का शाश्वत स्रोत है। प्रत्येक भारतवासी के स्वभाव तथा सत्त्व में यह बात दृढ़ होगी तो स्वतन्त्र भारत अमर होगा। इतना ही नहीं, बल्कि विश्व में शान्ति और सुख की प्रस्थापना के काम में भी वह इस विरासत को विश्व की सेवा के लिये समर्पित कर सकेगा। वास्तव में किसी भी समाज की धारणा और एकता उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक एकता पर ही आधारित होती है, क्योंकि स्नेह, सहिष्णुता और अनाक्रमणशीलता—ये इस एकता के गुण होते हैं। इसके विपरीत आधुनिक राजनैतिक एकता जनता में अस्नेह, असहिष्णुता और आक्रमणशीलता इन अवगुणों के आविष्कार तथा पोषण का ही साधन बन गयी है।

यदि स्वतन्त्र भारत की धारणा और संघटना को अभंग एकता की नींव पर खड़ी करना अभीष्ट है तो भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के सौंदर्य का भारतवासियों को परिचय होना नितांत आवश्यक है। इस दिशा में छोटे से कदम के तौर पर आजादी के थोड़े ही समय बाद मद्रास के मेरे एक स्नेही श्री सत्यनारायण मोटूर और मैंने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं की अनुमति और सहयोग से "अखिल भारतीय हिंदी परिषद्" और "भारतीय संस्कृति संगम" इन दो संस्थाओं की स्थापना की।

१९५२ के सेवापुरी सर्वोदय सम्मेलन में सर्व सेवा संघ ने श्री विनोबाजी के नेतृत्व में भूदान आंदोलन को भारत व्यापी बनाने का और दो वर्ष में पचीस लाख एकड़ जमीन भूदान में प्राप्त करने का संकल्प किया। इस संकल्प की पूर्ति के लिये बहुत से प्रांतों की मैंने पैदल यात्रा की। इस पदयात्रा में भारत की सांस्कृतिक एकता की और उसके संगम की आवश्यकता मुझे अधिक तीव्रता से महसूस हुई।

भूदान आंदोलन के कार्यकर्ताओं में आध्यात्मिक बंधुभाव अधिक बढ़े, इसके लिये विभिन्न प्रांतों के कार्यकर्ताओं के दीर्घ-कालीन शिविरों

का आयोजन करके उनमें स्वयं जाकर रहूँ, ऐसा एक विचार एक महीने के उपवास के बाद के शुद्ध चिन्तन में मुझे सूझा। सर्व सेवा संघ के सहकारियों ने इस विचार का स्वागत किया। श्री सिद्धराजभाई ढड्ढा के स्नेह के परिणाम-स्वरूप जयपुर के पास शिवदासपुरा के खादी ग्रामोद्योग विद्यालय में राजस्थान के कार्यकर्ताओं का तीन सप्ताह का पहला शिविर हुआ।

राष्ट्र की या विश्व की एकता की इमारत संतों की जीवनियों और आध्यात्मिक अनुभवों से प्राप्त दैवी सम्पत्ति की नींव पर ही खड़ी रह सकती है, क्योंकि संतों के हृदय विश्व प्रेम से तथा सहिष्णुता की भावना से भरे हुए होते हैं। शिवदासपुरा के शिविर में रोज सायंप्रार्थना में तुलसीदास की रामायण का पाठ और संत मीराबाई तथा संत सूरदास के भजनों का कार्यक्रम खासतौर पर रखा था। शिविर शुरू होने के कुछ दिन बाद विद्यालय के आचार्य श्री जवाहिरलालजी जैन ने सुझाया कि मेरे काम में मदद करने के लिये मेरे साथ आयी हुई श्री वृन्दा अभ्यंकर रोज सुबह की प्रार्थना में मराठी संतशिरोमणि श्री तुकाराम का एक अभंग मराठी में बोले और साथ-साथ उसका हिन्दी अनुवाद भी कहे। संस्कृति-संगम, और वह भी संत-तीर्थ पर, यह कल्पना मुझे पसन्द आयी और चि० वृन्दा ने भी इसका आनन्द और उत्साह से स्वागत किया। शिविर के आखिर तक रोज सुबह चि० वृन्दा तुकाराम का एक अभंग मराठी में बोलती और उसका अभ्यासपूर्वक किया हुआ हिन्दी अनुवाद पढ़कर सुनाती थी। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं विस्तार से भी समझा देती थी।

उस संत-तीर्थ के पवित्र संगम पर शिविरार्थी मनोयोगपूर्वक स्नान करते और सात्विक सुख का अनुभव करते थे—यह मेरे लिये तथा शिविर के सब भाई बहनों के लिये भी अपने जीवन में एक संस्मरणीय प्रसंग सिद्ध हुआ। उसका अनुरूप स्मारक यह "संत तुकाराम—संक्षिप्त जीवनी तथा वाणी" है। मुझे विश्वास है कि हिंदी भाषी जनता इसका हृदयपूर्वक स्वागत करेगी।

—शंकरराव देव

विषय-सूची

जीवनी

		पृष्ठ संख्या
१. आरंभिक	....	१
२. गुरूपदेश	....	६
३. नामदेव का दर्शन	....	७
४. काव्य-रचना की स्फूर्ति	....	७
५. प्रयाण	....	८
६. कुछ जीवन-प्रसंग	....	६
७. शिष्य-समुदाय	....	१३
८. काव्य-संग्रह	....	१३
९. ज्ञानदेव और एकनाथ का प्रभाव	....	१५
१०. आध्यात्मिक साधना	....	१५
(क) साधक अवस्था	....	१६
(ख) नैराश्य की अवस्था	....	१७
(ग) सिद्धावस्था	....	२२
११. उपदेश	....	२४
१२. कवित्व	....	३५
१३. हिन्दी रचनायें	....	३८
१४. उपसंहार	....	४०

वाणी

ईश्वर महिमा

१. तुज ऐसा कोणी न देखे उदार	....	४२
२. तूं माउलीहून मायाळ	....	४३

प्रार्थना

३. पापाची वासना नको दापूं डोळां	....	४४
४. देवा आतां ऐसा करीं उपकार	....	४५
५. सदा माझे डोळे जडो तुझी मूर्ति	....	४६
६. जाणोनि नेणतें करीं माझें मन	....	४७
७. ऐसे भाग्य कई लाहाता होईन	....	४८

पृष्ठ संख्या

प्रेम कलह

८. तुम्ही बैसलेतीं निर्गुणाचें खोळें ४९
९. चित्त घेऊनियां तूं काय देसी ५०

कारुण्य भावना

१०. मन माझें चपळ न राहे निश्चळ ५१
११. न कळे तो काय करावा उपाय ५२
१२. कासया गुण दोष पाहों आणिकांचें ५३
१३. बळें बाह्यात्कारें संपादिलें सोंग ५४
१४. कां रे माझा तुज न ये कळवळा ५५
१५. कोठें गुंतलासी कोणाच्या धांवया ५६
१६. माझिये जातीचें मज भेटो कोणी ५७
१७. सर्व भावें आलों तुजचि शरण ५८
१८. न मिळो खावया न वाढो संतान ५९
१९. फिरविलें देऊळ जनामाजी ख्याती ६०

अद्वैत

२०. आपुलें मरण पाहिलें म्यां डोळां ६१
२१. जेथें जातों तेथें तूं माझा सांगाती ६२
२२. आपुलिया बळें नाहीं मी बोलत ६३
२३. पिकलिया सेंद कडूपण गेलें ६४
२४. बीज भाजुनी केली लाही ६५
२५. विठ्ठल टाळ विठ्ठल दिण्डी ६६

नामस्मरण

२६. वेद अनंत बोलिला ६७

भक्ति मार्ग

२७. अवघ्या वाटा झाल्या क्षीण ६८
२८. मनवाचातीत तुझें हें स्वरूप ६९

पृष्ठ संख्या

संत-भक्त-महिमा

२९. जे कां रंजलें गांजले ७०
३०. मुक्तिपांग नाहीं विष्णूचिया दासा ७१
३१. चंदनाचे हात पाय ही चंदन ७२
३२. भक्तीचें तें वर्म जयाचिये हातीं ७३
३३. भक्त ऐसे जाणा जे देहीं उदास ७४
३४. कृपाळू सज्जन तुम्ही संतजन ७५
३५. चित्त शुद्ध तरी शत्रु मित्र होती ७६
३६. काय वाणूं आतां न पुरे हे वाणी ७७
३७. करावा संकोच चित्ताचि भोवता ७८

उपदेश

३८. पुण्य पर उपकार पाप तें परपीड़ा ७९
३९. कैं वाहावें जीवन ८०
४०. हेचि थोर भक्ति आवडती देवा ८१
४१. सत्य संकल्पाचा दाता नारायण ८२
४२. चालें हें शरीर कोणाचिये सत्ते ८३
४३. कां रे नाठविसी कृपाळु देवासी ८४
४४. पराविया नारी माउली समान ८५
४५. आलियां भोगासी असावें सादर ८६
४६. भोग तो न घडे संचितावांचूनि ८७
४७. निर्वैर व्हावें सर्वभूतांसवें ८८
४८. सर्वस्वाचा त्याग तो सदा सोंवळा ८९
४९. विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म ९०
५०. नको सण्डूं अन्न नको सेवूं वन ९१

सूक्तियां

मराठी तथा हिन्दी सूक्तियां ९२

संत तुकाराम

जीवनी

आरंभिक :

संत तुकाराम का जन्म बम्बई राज्य में पूना के निकट इंद्रायणी नदी के तटपर स्थित देहू गांव में हुआ था। यद्यपि तुकाराम के काल-निर्णय का प्रश्न विवादास्पद है, फिर भी सामान्य धारणा के अनुसार उनका जन्म शक १५२० (ई० सन् १५९८) में हुआ था। अपने जन्म से उन्होंने मोरे कुल को पवित्र किया था। उनका कुटुम्बनाम आंबिले था। तुकाराम ने स्वयं एक बार अपनी कथा सुनाई थी। भक्तों ने उन से यह जानने का आग्रह किया कि आपको वैराग्य किस प्रकार उत्पन्न हुआ। यह कथा तुकाराम गाथा की इक्कीस 'ओवियों'[1] में वर्णित है। ये ओवियां इस प्रकार हैं :—

यांती शूद्र वैश्य केला वेवसाय । आधी तो हा देव कुळ पूज्य ॥ १ ॥
नये बोलों परि पाळिलें वचन । केलियाचा प्रश्न तुम्ही संतीं ॥ २ ॥
संवसारें जालों अतिदुःखें दुःखी । मायबापें सेखीं क्रमिलिया ॥ ३ ॥
दुष्काळें आटिलें द्रव्य नेला मान । स्त्री एकी अन्न अन्न करितां मेली ॥ ४ ॥
लज्जा वाटे जीवा त्रासलों या दुःखें । वेवसाय देखें तुटी येतां ॥ ५ ॥
देवाचें देऊळ होतें जें भंगलें । चित्तासी आलें तें करावेंसे ॥ ६ ॥

---

१ ओवीछन्द—यह महाराष्ट्र का अत्यन्त प्राचीन लोक-छन्द है। ओवी का अर्थ होता है—गुम्फित-ग्रथित। एक ओवी में तीन चरण होते हैं। शब्द योजना अनुप्रासयुक्त होती है और तीनों चरणों के अन्त में यमक होता है। यद्यपि उसमें चौथा चरण भी होता है पर उसकी स्थिति गाने की टेक के समान होती है। अतः मुख्यतः तीन पाद की पदावली एक भावविशेष को गुम्फित कर 'ग्रंथ' कहलाती है। ओवियां विविध छन्दों में महाराष्ट्रीय स्त्रियों द्वारा प्रातः

आरंभीं कीर्तन करी एकदशीं । नव्हतें अभ्यासीं चित आधीं ॥ ७ ॥
कांहीं पाठ केलीं संतांचीं उत्तरें । विश्वास आदरें करोनियां ॥ ८ ॥
गातीं पुढें त्याचें धरावें ध्रुपद । भावें चित्त शुद्ध करोनियां ॥ ९ ॥
संतांचें सेविलें तीर्थ पायवाणी । लाज नाहीं मनीं येऊं दिली ॥१०॥
ठाकला तो कांहीं केला पर उपकार । केलें हें शरीर कष्टवूनी ॥११॥
वचनें मानिलीं नाहीं सुहृदांचीं । समूळ प्रपंचीं वीट आला ॥१२॥
सत्य असत्य सी मन केलें ग्वाही । मानियेले नाहीं बहुमतां ॥१३॥
मानियेला स्वप्नीं गुरुचा उपदेश । धरिला विश्वास दृढ नामीं ॥१४॥
यावरी या जाली कवित्वाची स्फूर्ति । पाय धरिलें चित्तीं विठोवाचें ॥१५॥
निषेधाचा कांहीं पडिला आघात । तेणें मध्यें चित्त दुखवलें ॥१६॥
बुडविल्या वह्या बैसलों धरणें । केलें नारायणें समाधान ॥१७॥
विस्तारी सांगतां बहुत प्रकार । होईल उशीर आतां पुरे ॥१८॥
आतां आहे तैसा दिसतो विचार । पुढील प्रकार देव जाणें ॥१९॥
भक्तां नारायणां नुपेक्षीं सर्वथा । कृपावंत ऐसा कळों आलें ॥२०॥
तुका म्हणे माझें सर्व भाण्डवल । वोलविले बोल पाण्डुरंगें ॥२१॥

मेरी जाति शूद्र है । मैंने वैश्य का व्यवसाय किया । शुरू से ही मेरे कुल में पाण्डुरंग भगवान की पूजा होती थी ॥१॥

यह कुछ बताने जैसी बात नहीं थी । लेकिन आप संतो ने प्रश्न किया इसलिये उसका उत्तर दिया ॥२॥

गृहस्थी के जंजाल से मैं बहुत दुखी होगया । आखिर मा बाप मर गये ॥३॥

अकाल पड़ने के कारण पैसा नहीं रहा । और सम्मान भी नहीं रहा । (पहली) पत्नी दाने दाने को मोहताज होकर मर गयी ॥४॥

इससे जी बहुत दुखी हुआ । और लज्जा मालूम हुई । व्यवसाय में टोटा पड़ते देखा ॥५॥

चक्की चलाते समय, बच्चों की आंखों में नींद बुलाते समय; खेतों में धान्य काटते समय, खलिहानों में उसे गाहते-उडाते समय गायी जाती हैं । 'अभिलषितार्थ-चिंतामणि' और 'संगीतरत्नाकर' में इस छन्द की चर्चा है । यद्यपि इसमें तीन पंक्तियां प्रमुख होती हैं तथापि यह बहुत लचीला छन्द है । अभंग और ओवी में समानता इस दृष्टि से है कि दोनों के तीसरे और दूसरे चरण में यमक अलंकार की चमत्कृति होती है ।

भगवान का मंदिर जो टूट फूट गया था उसे ठीक करायें, ऐसी इच्छा हुई ॥६॥

सर्व प्रथम एकादशी को कीर्तन किया । लेकिन उस समय अभ्यास नहीं था ॥७॥

इसलिये कुछ संतों के वाक्य विश्वास और आदरपूर्वक कण्ठस्थ किये ॥८॥

गानेवालों के पीछे शुद्ध चित्त से मैं भक्तिभाव पूर्वक ध्रुपद का उच्चारण करता गया । ॥९॥

संतचरणामृत का सेवन किया । इसके लिये मनमें कोई लज्जा आने नहीं दी ॥१०॥

यथाशक्ति दूसरों का उपकार किया । इसमें शरीर-कष्ट की परवाह नहीं की ॥११॥

स्वजनों का कहना नहीं माना । गृहस्थी से जी बुरी तरह ऊब गया ॥१२॥

सत्य-असत्य के लिये मन को ही साक्षी बनाया । और रूढिग्रस्त बहुमत को नहीं माना ॥१३॥

स्वप्न में गुरु के किये हुए उपदेश को स्वीकार किया । हरिनाम में दृढ विश्वास रखा ॥१४॥

इसके बाद काव्य-रचना की प्रेरणा हुई । मैंने विठोवा के चरण अपने हृदय में धारण किये ।

इस बीच मेरी कविता का विरोध हुआ । इस आघात से मेरा मन व्यथित हुआ ॥१६॥

पुस्तकें पानी में डुबोदी गयीं । मैं धरना देकर बैठ गया । नारायण ने मेरा समाधान किया ॥१७॥

अधिक विस्तार से कहने में विषय बहुत बढ जायगा । समय बहुत लगेगा । इसलिये इतना काफी है ॥१८॥

आज की जो हालत है वह तो प्रगट ही है । इससे आगे क्या होगा सो भगवान जाने ॥१९॥

भगवान अपने भक्त की बिलकुल भी उपेक्षा नहीं करता । वह कृपालु है—ऐसा मैं समझ गया हूं ॥२०॥

मेरी सारी पूंजी एक पाण्डुरंग ही है। उसी ने मुझसे शब्द कहलवाये हैं ॥२१॥

यह वर्णन स्वमुख से हुआ—यह भी उनके मनको सहन नहीं हुआ। अतः वे अत्यंत नम्रभाव से कहते हैं—

ऐका वचन हे संत। मी तो आगळा पतित।
काय काजें प्रीत। करीतसां आदरें ॥ १ ॥
माझें चित्त मज ग्वाही। सत्य तरलों मी नाहीं।
ऐकाचिये वाहीं। एक देखी मानिती ॥ २ ॥
वहु पीड़िलों संसारें। मोड़ीं पिसें पिटीं ढोरें।
न पड़तां पुरें। या विचारें राहिलों ॥ ३ ॥
सहज सरलें होतें कांहीं। द्रव्य थोडें वहु तेंही।
त्यांग केला नाहीं। दिलें द्विजां याचकीं ॥ ४ ॥
प्रिया पुत्र वंधु। यांचा तोडिला संवंधु।
सहज जालों मंदु भाग्यहीन करंटा ॥ ५ ॥
तोंड न दाखवावें जना। शिरें सांदीं भरें राना।
एकांत तो ज्ञाणा। तयासाठीं लागला ॥ ६ ॥
पोटें पिटलें काहारें। दया नाहीं या विचारें।
वोलाविता वरें। सहज म्हणे या साठीं ॥ ७ ॥
सहज वडिलां होती सेवा। म्हणोनि पूजितों या देवा।
तुका म्हणे भावा। साठीं झणीं ब्या कोणी ॥ ८ ॥❋

हे संतजन, सुनिये, मैं तो अत्यंत पतित हूँ। ऐसा होते हुये भी किस कारण से आप मेरे प्रति आदर और प्रेम रखते हैं? (यह मेरी समझ में नहीं आता) ॥ १ ॥ इसके लिये मेरा ही चित्त मेरा साक्षी है। दर असल मैं तर गया होऊं, ऐसा कुछ नहीं है। एक को देख कर दूसरा इस तरह लोग मुझे मानने लगे हैं ॥ २ ॥ गृहस्थी में वहुत पीडित हुआ। (खेती के काम में) वैलों को पीटा, उनकी पूंछ मरोडी, फिर भी गृहस्थी का काम नहीं चला। यह देखकर प्रयत्न छोड़ दिया ॥ ३ ॥ जो कुछ थोड़ा द्रव्य था वह खर्च हुआ। ब्राह्मणों अथवा याचकों को देकर त्याग किया हो ऐसी वात नहीं ॥ ४ ॥ पत्नी, पुत्र व वंधु-वांधवों से संवंध तोड दिया। इस कारण (सांसारिक दृष्टि से) मूर्ख व अभागा

❋ ६५४

बन गया ॥ ५ ॥ लोगों को मुंह दिखाने में शर्म आने लगी । और जंगल के किसी कोने में घुस कर बैठ गया । इसी कारण एकांत मिला ऐसा समझो ॥ ६ ॥ भूख से पीडित हुआ । इस कारण कारुण्यभाव लुप्त हो गया । इच्छा हुई कोई बुला ले तो अच्छा ॥ ७ ॥ इस पाण्डुरंग की पूजा बाप दादा से चलती आई ही थी । इसलिये मैं भी कर रहा हूँ । यह बहुत भक्तिभाव से करता हूँ ऐसा कोई नहीं समझें ॥ ८ ॥

तुकाराम का घराना गांव में अत्यंत प्रतिष्ठित था । गांव की साहूकारी उनके घराने में पीढ़ियों से चली आयी थी । तुकाराम के आठवें पूर्वज श्री विश्वंभर बाबा के समय से उनके कुटुंब में विठ्ठल-भक्ति और पंढरपुर की यात्रा (वारी) का नियम चालू था । तुकाराम के शब्दों में विठ्ठल की भक्ति "वडिलांची मीरास"—पिता की विरासत थी । तुकाराम के पिता बोल्होबा और माता कनकाई दोनों बड़े ही सात्विक वृत्ति के थे । माता पिता की सात्विकता तुकाराम में प्रकट होती है ।+ 'शुद्ध बीजापोटीं फळें रसाळ गोमटीं'—उत्तम बीज से उत्पन्न फल भी रसीला होता है । कनकाई की संत नामदेव में विशेष भक्ति थी । ऐसा माना जाता है कि वही भक्ति-प्रेम बाद में तुकाराम के हृदय में प्रतिष्ठित हुआ । तुकाराम की अभंग वाणी पर संत नामदेव का गहरा प्रभाव स्पष्ट है । तुकाराम के बड़े भाई सावजी और छोटे भाई कान्होबा थे ।

तुकाराम के आयु के आरंभिक तेरह वर्ष माता पिता की प्रेमपूर्ण छत्रछाया में अत्यंत सुख से व्यतीत हुये । बालक तुकाराम अच्छे खिलाड़ी रहे होंगे । उन्हें टिपरी, गेंद, हमामा, हुँवरी आदि प्राचीन महाराष्ट्रीय खेलों से संभवतः अच्छा परिचय था, क्योंकि इन सब खेलों के आधार पर ईश्वर का वर्णन उन्होंने किया है ।× इन वर्णनों में उनके खिलाड़ीपन की अच्छी झलक दिखाई देती है ।

तुकाराम के अभंगों से प्रतीत होता है कि उन्हें काफी समय तक मातृस्नेह मिला था । 'माय बापें हीं अवघींदेवाचीं स्वरूपें होत'—माता पिता भगवान के स्वरूप हैं । इस प्रकार के उद्गारों से उनकी मातृभक्ति भी प्रकट होती है ।

तुकाराम का पहला विवाह रखुमाई से हुआ । सत्रह वर्ष की आयु में उनके मातापिता का देहांत हो गया । इसके बाद उनके बड़े भाई

+ २२७२ × 'बाळक्रीडेचे अभंग' (९ से १०८)

सावजी तीर्थ यात्रा के लिये चले गये। इक्कीसवें वर्ष से उन पर विशेष विपत्तियां आने लगीं। उनका साहूकारी काम बिगड़ गया और दिवाला निकल गया। उन्हीं दिनों अकाल पड़ा और उनकी पत्नी तथा पुत्र संतू दाने-दाने को मोहताज होकर मर गये।

तुकाराम की दूसरी पत्नी आवली या जिजाई कर्कशा स्त्री थी। उनके द्वारा तुकाराम को सुख मिलना तो दूर रहा, समाज में दुर्दशा ही भोगनी पड़ी। एक ओर आर्थिक साधनों का अभाव, दूसरी ओर गृह कलह। इस तरह दोनों ओर से निराश होकर तुकाराम के मन में विरक्ति आगई और गृहस्थी से ऊब कर वे उससे बाहर निकलने का मार्ग खोजने लगे।

वे देहू के पास स्थित भामनाथ, मण्डारा या गोरोडा इन में से किसी एक पहाड़ पर जाकर एकांतवास करने लगे। उन्होंने अपनी चित्तवृत्ति को देवार्पित करने का प्रयत्न किया। 'ज्ञानेश्वरी' और 'एकनाथी भागवत' का चिंतन तथा मनन आरंभ किया। देहू के विठ्ठल मंदिर का जीर्णोद्धार कर वहां भगवान् का कीर्तन भी वे करने लगे। संतों की वाणी का अध्ययन भी उन्होंने इस समय किया।

गुरूपदेश

इसी समय तुकाराम को गुरूपदेश प्राप्त हुआ। 'राघव चैतन्य, केशव चैतन्य की परंपरा के बाबाजी नामक एक सत्पुरुष ने उन्हें माघ शुक्ला दशमी गुरुवार शक १५४१ की रात्रि को सपने में 'रामकृष्ण हरि' नाम का उपदेश किया।'

'राघवचैतन्य केशव चैतन्य। सांगितली खूण माळिकेची।
बाबाजी आपुलें सांगितलें नाम। मंत्र दिला रामकृष्ण हरि।
माघ शुद्ध दशमी पाहोनि गुरुवार। केला अंगिकार तुका म्हणे।'=

इस संबंध में बहुत मतभेद हैं। कुछ लोगों का विचार है कि केशव चैतन्य ही बाबाजी हैं। लेकिन यह मत बहुत विश्वसनीय नहीं है। बहुत से लोगों के मत में केशवचैतन्य और बाबाजी दो विभिन्न व्यक्ति हैं। तुकाराम की शिष्या संत बहिणाबाई के आधार पर गुरुपरंपरा इस प्रकार है :—

(१) ज्ञानेश्वर, (२) सच्चिदानंद बाबा, (३) विश्वंभर, (४) राघव चैतन्य, (५) केशव चैतन्य, (६) बाबाजी, (७) तुकाराम।

=४८६

तुकाराम ने अपने गुरु बाबाजी का दो तीन स्थानों पर उल्लेख किया है। एक जगह 'बाबाजी सद्गुरु'※ कहा है। दूसरी जगह वे कहते हैं कि गुरु के स्थूल दर्शन नहीं हुये तो कोई हर्ज नहीं। उनकी कृपा से मिला हुआ सूक्ष्म दर्शन–स्थूल दर्शन के समान ही महत्वपूर्ण है।

नामदेव का दर्शन

इसी समय तुकाराम को स्वप्न में नामदेव का दर्शन हुआ। नामदेव ने उन्हें अपने शतकोटि अभंगों की प्रतिज्ञा पूर्ण करने का आदेश दिया। तुकाराम का कहना है कि नामदेव के साथ ही उन्हें भगवान्–(विठ्ठल) के दर्शन भी हुये।

'नामदेवें केलें स्वप्नामाजी जागें। सवें पाण्डुरंगें येऊनियां ॥ सांगितलें काम करावें कवित्व'।= नामदेव ने स्वप्न में आकर मुझे जगाया। खुद पाण्डुरंग भी आये। उन्होंने आदेश दिया कि काव्य रचना करो।

काव्यरचना की स्फूर्ति

तुकाराम को काव्यरचना की स्फूर्ति हुई। कीर्तन के रंग में डूबे रहने के कारण काव्य-गंगा अखण्डरूप से बहने लगी। उनका यह प्रसन्न कवित्व रामेश्वर भट्ट नामक दशग्रंथी ब्राह्मण विद्वान से न देखा गया। उनके समाधान के लिये तुकाराम की कविताओं का संग्रह इन्द्रायणी नदी में फेंक दिया गया। दुखी होकर तुकाराम ने तेरह दिन का निर्जल उपवास किया। 'तेरा दिवस झाले निश्चक्ककरिता'×—निर्जल उपवास करते तेरह दिन होगये। कहा जाता है कि तुकाराम को भगवान का दर्शन हुआ और उनकी कविताओं की पुस्तकें पानी से निकल आयीं। उसी समय से उनके विरोधियों का विरोध भी समाप्त हो गया। तुकाराम का जीवन—'अवघ्या आनंदाचे'–'संपूर्ण सुख का' हो गया।

तुकाराम के हृदय में आनन्द की ऊर्मियों का संचार हुआ। जो संसार पहले उनके लिये दुख और घृणा का केन्द्र था वह नारायण-स्वरूप होगया। उनके मुख पर इस ईश्वर-साक्षात्कार का तेज प्रकट हुआ। 'मैं धन्य हो गया'–'धन्य झालों'–ऐसा वे कहने लगे। उनका शेष जीवन केवल उपकार के लिये—'उपकारा पुरतां'–+ रहा है ऐसा उन्होंने माना। तुकाराम ने शेष जीवन में 'मेघवृष्टि'= से उपदेश दिया, और स्वयं

※ ३५६ =४६० × ५१२ + ४०५४ =३६२५।

आत्मसाक्षात्कार का सुख अनुभव करके दूसरों को भी उसकी अनुभूति कराई। इस प्रकार उनके लगभग सत्रह वर्ष परमार्थ-सुख में व्यतीत हुए।

प्रयाण

तुकाराम को अन्तकाल के चिन्ह दिखाई देने लगे। वैसे तो पहले ही उन्होंने अपनी मृत्यु अपनी आंखों से देखने का अनुभव किया था× देहासक्ति उनके मन से कभी की समाप्त हो चुकी थी।÷

उनका देहावसान फाल्गुन वदी द्वितीया शक १५७१ (ई० सन् १६४६) को हुआ। 'उस पार भगवान् आये हैं, साथ में पंखों की आवाज करनेवाला उनका वाहन गरुड़ भी है और भगवान वैकुण्ठ में बुला रहे हैं'—

पैल आले हरि। गरुड़ येतो फडत्कारें। ¶
वैकुण्ठा श्रीरंग बोलावितों। §

परंपरा इस प्रकार है कि तुकाराम सदेह वैकुण्ठ गये। शरीर के साथ ही तुकाराम गुप्त हो गये।

'कुडी सहित झाला गुप्त तुका'— + ऐसा तुकाराम का एक वचन भी है।

इसके अतिरिक्त श्री संताजी जगनाडे का एक लेख भी इस आशय का है। 'तुकोबा गोसावी वैकुण्ठास गेले—स्वदेहानिसी गेले' अर्थात् तुकोबा गोसावी वैकुण्ठ गये, स्वदेह के साथ गये।

जिसको गोविंद की धुन लग जाती है उसकी काया भी गोविंद-स्वरूप होती है—

गोविंद गोविंद—मना लागलिया छंद ॥१॥
मग गोविंद ते काया। भेद नाहीं देवा तया ॥२॥+

तुकाराम की इस उक्ति के अनुसार अथवा "सदेह सच्चिदानंद कां नोहावेते" अर्थात् 'सदेह सच्चिदानंद क्यों नहीं देखें'—(ज्ञानेश्वरी १८-१६४५) ज्ञानदेव के इस वचन के अनुसार तुकाराम सदेह वैकुण्ठ गये—यह कहने की परंपरा चल पड़ी होगी प्रो० रा० द० रानडे का यह मत विशेष मननीय है।

× ४०४६ ÷ ४०५१ ¶ ६७८ § ६८८ + ६८८

तुकाराम के कुछ जीवन-प्रसंग

सामान्यत: तुकाराम की रचना ईश्वर-भक्ति और आत्म-निवेदन आदि विषयों से ही संबंधित है। फिर भी कुछ रचनायें ऐसी हैं जिनमें संभवत: उनके जीवन में आये हुए विविध प्रसंगों का वर्णन है। उन रचनाओं से तुकाराम के जीवन और स्वभाव पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं :—

१. तुकाराम एक बार ज्ञानदेव के दर्शन के लिये आलंदी जा रहे थे। रास्ते में पेड़ के नीचे उन्होंने पक्षियों को दाना चुगते देखा। तुकाराम को देखते ही पक्षी उड़ गये। इससे तुकाराम का मन व्यथित हुआ। उस वक्त उन के मुख से यह अभंग निकला—

अवघीं भूतें साम्या आलीं। देखिली म्यां कैं होती ॥१॥
विश्वास तो खरा मग। पाण्डुरंग कृपेचा ॥२॥
माझी कोणी न धरू शंका। तैसें हो कां निर्द्वन्द्व ॥३॥
तुका म्हणे जें जें भेटें। तें तें वाटें मी ऐसे ॥४॥*

भूत मात्र एक रूप है, ऐसा मैं कब देख सकूं ? ॥१॥

जब ऐसा होगा तभी मुझ पर पाण्डुरंग ने कृपा की है, ऐसा विश्वास मुझे आयेगा ॥२॥

मेरी ऐसी द्वंद्वरहित स्थिति होनी चाहिये। मेरे प्रति किसी को थोड़ा भी शक न हो, अर्थात् मुझ से किसी को जरा भी भय न लगे ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—जिस-जिस से मेरी भेंट हो, वह मुझे मेरा ही स्वरूप लगे ॥ ४ ॥

बाद में तुकाराम श्वासोच्छ्वास रोक कर उसी जगह शांत तथा स्थिर हो गये। और सर्वान्तर्यामी ईश्वर का स्मरण करके स्तंभ की भांति निश्चल खड़े रहे। जब तक पक्षी मेरे प्रति निर्भय नहीं बनेंगे, तब तक मैं यहां से नहीं हटूंगा—ऐसा उनका निश्चय था। आखिर डेढ़-दो घंटे के बाद सारे पक्षी उनका प्रेममय विश्व-आत्मभाव देख कर उनके कंधों पर आकर निर्भयता से खेलने लगे। यह देख कर तुकाराम की भजन में धुन लग गई और वे भी झूमने लगे ॥

---

* ६५६

२. विषयसुख की इच्छा से एक तरुण स्त्री उनके पास आई, तो उन्होंने कहा—'पराविया नारी रखुमाई समान हें गेलें नेमून ठाई चेंची।' + परनारी रखुमाई (विठोबा की पत्नी रुक्मिणी) समान मानना यह नियम शुरू से ही बन चुका है।

३. एक बार तुकाराम देहू गांव में कीर्तन कर रहे थे। तब एक स्त्री ने मरा हुआ बच्चा उनके सामने लाकर डाल दिया। उस समय उनके मुख से आवेशयुक्त वाणी इस प्रकार निकली :—

'अशक्य तें तुम्हां नाहीं नारायण। निर्जीवा चेतना आणावया।'❀

हे नारायण ! निर्जीव में चैतन्य लाना तुम्हारे लिये असंभव नहीं।

४. जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है तुकाराम के काव्य-संग्रह इंद्रायणी नदी में रामेश्वर भट्ट के विरोध के कारण डुबो दिये गये थे, इससे तुकाराम के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। उन्हें लगा कि उनकी आज तक की भक्ति व्यर्थ साबित हुई। तेरह दिन का निर्जल उपवास उन्होंने किया। आखिर ईश्वर ने—'उदकीं राखिले कागद चुकविला जनवाद।'= अर्थात् पानी में पुस्तकों की रक्षा करके जनापवाद से बचाया।

तुकाराम को ऐसा लगा कि इस प्रकार संकट में डाल कर उन्होंने ईश्वर के प्रति भी 'थोर अन्याय'—घोर अन्याय कर डाला। अपना ऐसा करना उन्हें अपराध लगा। इस भावना को तुकाराम ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

नव्हती आली सीसा सुरी। अथवा घाव पाठीवरी।
नों म्यां केला हरी। एवढा तुम्हां आकांत ॥ १ ॥
बांटिलासी दोन्हीं ठायीं। मज पाशीं आणि डोहीं ॥
नागों दिला नाहीं। येथें तेथें आघात ॥ २ ॥
जीव घेती मायबापें। थोड्या अन्यायाच्या कोपे।
हे तों नव्हें सोरें। साहों त्वांचि जाणितलें ॥ ३ ॥
तुका म्हणे कृपावंता। तुज ऐसा नहीं दाता।
काय वाणूं आतां। वाणी माझी खुंटली ॥ ४ ॥ ×

मेरे सिर पर न तो किसी ने छुरा मारा था और न पीठ पर किसी ने घाव किया था, जो मैंने आपको इतना पुकारा ॥ १ ॥

+ ६५१ ❀ ६४३ = ५११ × ५१३

आप पुस्तकों की रक्षा के लिये पानी में और मेरी रक्षा के लिये मेरे पास खड़े रहे और इस प्रकार आपने अपने आपको दो जगह बांटकर दोनों को आघात पहुँचने नहीं दिया ॥ २ ॥

बालक से थोड़ा सा भी अपराध हो जाने पर मां-बाप उसकी जान ही निकाल डालते हैं । लेकिन मेरा अपराध अक्षम्य होने पर भी आपने उसे सह लिया। यह आप ही सह सकते हैं—इतना मैंने जान लिया ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं—हे कृपालु भगवन ! आप जैसा दाता नहीं है। मैं क्या वर्णन करूं ? मेरी वाचा कुंठित हो गयी है ॥ ४ ॥

आखिर वे कहते हैं—'चुकी झाली एक वेळा। मज पासूनि चाण्डाळा'× मुझ चाण्डाल से एक बार अपराध हुआ है ।

'क्षमा करी वो माझे आयी। आतां पुढं कांहीं। तुज घालू सांकडें' ॥÷

हे देव, मेरी मां, अब इस वक्त मुझे क्षमा करना। इसके आगे मैं आपको कभी संकट में नहीं डालूंगा ।

५. एक बार तुकाराम पण्ढरपुर की यात्रा में नहीं जा सके। उस समय उन्होंने वहां जाने वाले वारकरी लोगों के हाथ भगवान पाण्डुरंग के नाम एक पत्र लिख भेजा। वह पत्र अत्यंत प्रसिद्ध है और उसका माधुर्य अवर्णनीय है।

कांहीं माझे कळों आले गुणदोष। म्हणउनि उदास धरिलें ऐसें।
नांहीं तरी येथें न घडे अनुचित। नाहीं ऐसी रीत तया घरीं+ ॥
नव्हे धीर कांही पाठवूं निरोप। आला तरी कोप येऊं सुखें।
कोपोनियां तरी देईल उत्तर। जैसें तैसें पर फिरावूनी ॥ ❀

हे मेरे माई-बाप। मेरे कुछ गुणदोष आपकी समझ में आ गये हैं ? इसलिये क्या आपने मुझे भुला दिया ! अन्यथा आप मुझे भुला दें, ऐसा अनुचित हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके घर की ऐसी परंपरा नहीं है। हे भगवान, अब मैं धैर्य धारण नहीं कर सकता। इसलिये मैं वारकरी लोगों के हाथ संदेश भेज रहा हूँ। मेरी यह ढिठाई और अधीरता देख कर अगर आपको क्रोध आ जाय तो आ जाय, क्रोधित होकर ही सही, आप मुझे जवाब तो देंगे ?

× ५१४ ÷ ५१५ + ५६६ ❀ ५८५

आखिर वे अधीरता से कहते हैं—

'परीसोनी उत्तर । जाब देईजे सत्वर *

मेरी सारी बातें सुनकर आप जल्दी जवाब दीजिये ।

६. तुकाराम के भक्तिभाव को देख कर शिवाजी महाराज के मन में उनके प्रति बहुत आदर हो गया था। एक बार उन्होंने तुकाराम के घर पालकी भेजकर उनके स्वागत का आयोजन किया। परन्तु तुकाराम को अपने स्वागत की यह तैयारी देख कर भारी दुःख हुआ। उन्होंने अपने मन में कहा—मेरी भक्ति का क्या यही फल है ? क्या इसी के लिये मैं भक्ति करता हूँ ? उनको ऐसा प्रतीत हुआ मानों भगवान मान-संमान का का यह फल उनके हाथ में रख कर उन्हें अपने से दूर हटा रहा है। उन्होंने कहा:—

जाणोनि अंतर । टाळीसील करकर ॥
तुज लागली हे खोड़ी । पाण्डुरंगा वहुकुड़ी ॥×

हे पाण्डुरंग मेरे हृदय की भावना जानते हुए भी यह झंझट दूर करने के लिये क्या आपने ऐसा किया ? ऐसा लालच दिखाया ? आपका यह ऐब बहुत खोटा है।

शिवाजी की भेजी हुई वह सारी संपत्ति देख कर तुकाराम ने कहा :—

मुंगी आणि राव । आम्हा सारखाची जीव ॥ १ ॥
गेला मोह आणि आगा । कळिकाळाचा हा फांसा ॥ २ ॥
सोनें आणि माती । आम्हां समान हें चित्तीं ॥ ३ ॥
तुका म्हणे आलें । घरां वैकुण्ठ सावळे ॥+

हमारे लिये चींटी से लेकर राजा तक सारे जीव समान हैं। हमारे मोह, आशा और कालपाश सब नष्ट हो चुके हैं। सोना और मिट्टी हम एक ही मानते हैं। हमारे घर में तो प्रत्यक्ष भगवान आकर निवास करते हैं। अब हमको क्या कमी है ?

'पाईकी'—सेवकत्व के दस अभंग संभवतः महाराज शिवाजी को ही संबोधित करके लिखे गये हैं। इनमें निवृत्त और प्रवृत्त दोनों प्रकार के लोगों को एक साथ उपदेश किया गया है। गार्हस्थ्य या परमार्थ-साधन,

* ५५७ × ६४१ + ६४०

दोनों में पराक्रम की आवश्यकता है। यह उन्होंने आग्रहपूर्वक बार बार कहा है। सेवकत्व चाहे देश का हो चाहे भगवान का, अत्यंत महान है। सेवकत्व का सुख सेवक को ही मालूम होता है। जीवन की परवाह न करनेवाला सेवक—'जिवाचा उदार'—अपने सेवकत्व द्वारा ही शोभा पाता है। ये अभंग इस बात को सिद्ध करते हैं कि तुकाराम समाज के प्रति अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में उदासीन नहीं थे।÷

शिष्य-समुदाय

तुकाराम का शिष्य-समुदाय बहुत बड़ा था। उसमें संताजी जगनाड़े गंगाराम बुआ मवाळ, शिवबा कासार, रामेश्वर भट्ट और संत कवयित्री बहिणाबाई, संत निळोबा पिंपळनेरकर आदि अधिकारी व्यक्तियों का समावेश है।

काव्य-संग्रह

तुकाराम की काव्यरचना का समय लगभग पचीस वर्ष का था। इस अवधि में उनके द्वारा लगभग पांच हजार अभंगों की रचना हुई होगी। तुकाराम के अभंगों के संग्रह 'गाथा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कुल संग्रह ग्यारह हैं, इनमें तीन विशेष महत्व के हैं। पहली गाथा ई० सन् १८६६ में सरकारी प्रेरणा से प्रकाशित हुई थी। सर अलग्जैण्डर ग्रैण्ड ने इस प्रकाशन के लिये सरकार से चौवीस हजार रुपये की सहायता दिलाई थी। यह गाथा 'इन्दुप्रकाश' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें शंकर पाण्डुरंग पण्डित ने बड़े परिश्रम से ४६२१ अभंगों का संग्रह किया है।

तुकाराम की दूसरी महत्वपूर्ण गाथा 'वारकरी संप्रदाय'[1] के आचार्य विष्णु बुआ जोग ने ई० सन् १६०६ में संपादित की। परंपरा पर

÷ ३७३ से ३८३

१वारकरी संप्रदाय:— वारी (यात्रा) करी (करनेवाला) = यात्रा करने वाला। जो यात्रा करता है वह वारकरी कहलाता है। धार्मिक दृष्टि से उसे वारकरी कहते हैं जो पण्ढरपुर स्थित विठ्ठल मूर्ति का उपासक है और आषाढ तथा कार्तिक शुक्ला एकादशी को नियमितरूप से पण्ढरपुर की यात्रा कर मूर्ति के दर्शन करता है। यह धर्म-यात्रा आषाढ-कार्तिक की शुक्लपक्षीय एकादशी के अतिरिक्त अन्य महीनों की एकादशी को भी की जा सकती है।

इस पंथ में पण्ढरपुर की 'वारी' की जाती है इसलिये वह 'वारकरी' कहलाता है। इसमें पाण्डुरंग को प्रिय तुलसी की माला धारण की जाती है। इसमें

आधारित होने के कारण यह विशेष मान्य हुई है। 'महाराष्ट्र सारस्वत' के लेखक श्री वि० ल० भावे ने ई० सन् १६२० में 'तुकारामांची अस्सल गाथा'–इस शीर्षक से उनके अभंगों का तीसरा संग्रह प्रकाशित किया। यह संग्रह एक अलग ही दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है। तुकाराम के चौदह पट्ट शिष्यों में से एक श्री संताजी जगनाडे के हाथ की लिखी हुई अभंगों की पुस्तक तलेगांव दाभाडे में उनके वंशजों के पास है। श्री वि० का० राजवाडे ने उस संग्रह की वास्तविकता सिद्ध की है। संताजी तुकाराम के परम भक्त थे। अतः उनके हाथ से लिखे गये अभंगों की विश्वसनीयता स्पष्ट है। इसमें शक नहीं कि इस गाथा की भाषा अन्य गाथाओं की भाषा से बहुत अशुद्ध और ग्रामीण लगती है। पर संताजी के हाथ से लिखी हुई होने के कारण यह उस समय की असली भाषा है और तत्कालीन लौकिक मराठी का असली नमूना है।

पूना के 'तुकाराम चर्चा मण्डल' की ओर से प्रो० पटवर्धन और प्रो० केळकरने डा० भण्डारकर के नेतृत्व में अर्थ की दृष्टि से 'कुछ अभंगों की चर्चा' की है वह भी उल्लेखनीय है। जस्टिन ऐबर्ट और रेव० ऐडवर्ड्स, इन दो पादरियों ने तुकाराम के सम्बन्ध में कुछ मौलिक विवेचन किया है। नेल्सन फ्रेजर ने तुकाराम के कुछ अभंगों का अंग्रेजी अनुवाद तीन भागों में प्रकाशित किया है।

तुकाराम के अभंगों की रचना का क्रम निश्चित करना कठिन है। अपने उपास्य दैवत पर उन्होंने 'बालक्रीड़ा'+ के अभंग पहले रचे होंगे। कुछ रचना ओवियों में है। ये अभंग तीन से लेकर तीस चरणों तक

भगवान को सर्वस्व अर्पित किया जाता है। इसलिये इसे भागवत संप्रदाय भी कहते हैं।

विठ्ठल की प्रतिमा के हाथों में विष्णु के चक्र और पद्म चिन्ह हैं। वारकरी विठ्ठल को कृष्णावतार मान कर पूजते हैं। वारकरी संतों ने विष्णु और शिव को एक कर जनता के हृदयों से सांप्रदायिक कालुष्य को धोने का प्रयत्न भी किया है। इस पंथ में श्री निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ता-बाई, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, निलोबाराय आदि संत और वेद, गीता, भागवत ज्ञानेश्वरी, श्रीनाथ, भागवत तुकाराम बुआंची गाथा, हरिपाठ तथा अन्य संतों के ग्रंथ मान्य हैं।

+ १०८

छोटे-बड़े स्वरूप के हैं। तुकाराम की मुख्य रचना [1]'अभंगों' में है। इस प्रौढ काव्य में तुकाराम का पारमार्थिक चरित्र संपूर्णतया बिंबित हुआ है।

ज्ञानदेव और एकनाथ का प्रभाव

तुकाराम की काव्य रचना पर ज्ञानदेव और एकनाथ का काफी प्रभाव है। 'ज्ञानेश्वरी' और 'एकनाथी भागवत', ये वारकरी संप्रदाय के धर्मग्रन्थ हैं और इन दोनों की छाया तुकाराम की वाणी पर है।

'कांहीं पाठ केलीं संतांची उत्तरें।'+ संतों के कुछ वचन कण्ठस्थ किये—यह तुकाराम का वचन प्रसिद्ध है। साधकदशा में उन्होंने उपर्युक्त दोनों ग्रंथों का देहू के निकटवर्ती पहाड़ों पर एकान्त वास में बार बार पारायण किया था। यह भी ऊपर लिखा जा चुका है। इन तीनों संत कवियों की रचना यद्यपि विचार और कल्पना की दृष्टि से एक सरीखी है, किंतु प्रत्येक का रचनासौंदर्य अपना अपना निराला ही है।

तुकाराम की आध्यात्मिक साधना

जैसा ऊपर लिख चुके हैं, तुकाराम की काव्य रचना अत्यन्त आत्म-परक और अंतर्मुख है। उसमें उनके पारमार्थिक जीवन के विकास का दर्शन किया जा सकता है। सामान्य गृहस्थ से आत्मसाक्षात्कारी संत— इस विकास का क्रम इन के काव्य में देखने को मिल जाता है, तथापि उनके आत्मिक विकास का क्रम अभंग वाणी से निश्चित करना सरल कार्य नहीं है।

तुकाराम के आध्यात्मिक चरित्र का सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाय, तो उसमें तीन अवस्थायें दिखाई देती हैं। पहली अवस्था साधक की है। उस अवस्था में तुकाराम अपने मन में कुछ निश्चय करके गृहस्थी की ओर से विमुख और परमार्थ की ओर संमुख हुए हैं ऐसा लगता है। दूसरी अवस्था में ऐसा प्रतीत होता है कि उनके प्रयत्न

---

१ अभंग छंद:—यह सर्वथा महाराष्ट्रीय छंद है। इसकी लम्बाई की कोई सीमा नहीं है। इसलिये यह अभंग (अटूट) कहलाता है। दो से लेकर दो सौ 'चौक' भी एक अभंग में आ सकते हैं। अभंग की एक 'ओलि'—(पंक्तिसमूह) चार चरण की होती है। चार चरणों का एक चौक होता है। इन चरणों में अक्षर, मात्रा और गण का एक भी नियम लागू नहीं होता।

+ १०८

सफल नहीं हुए। अतः वे सामान्य गृहस्थ अवस्था और परमार्थ अवस्था इन दोनों को खो बैठे। इस परिस्थिति में से उत्पन्न होने वाली तीव्र निराशा की भावना उनके मन को घेरे हुए है। पर अंधकार में तड़पती हुई तुकाराम की आत्मा इस अंधेरी रात्रि को जल्दी ही खतम कर देती है। तुकाराम के मानस में आत्मसाक्षात्कार का सूर्योदय होता है। यह उनकी तीसरी अवस्था है। इस तरह साधक, वंचित और सिद्ध ऐसी तीन अवस्थायें उनके पारमार्थिक जीवन में आती हैं। पहली अवस्था में निश्चय, दूसरी में नैराश्य और तीसरी में आनंद—यह एक तरह से तुकाराम के आध्यात्मिक जीवन का इतिहास है।

साधक अवस्था

इस अवस्था में तुकाराम का मन दृढ़, निश्चय अटल और आशा ऊंची दिखाई देती है। वे ध्येयवादी और प्रयत्नवादी प्रतीत होते हैं। गृहस्थी के कष्टों से अंदर बाहर से दग्ध होकर तुकाराम मन में कुछ निश्चय करते हैं और परमार्थ का रास्ता पकड़ते हैं। वे सांसारिक कीर्ति और लोकलज्जा को भी छोड़ देते हैं। उन्हें अपनी विपत्तियां मंगलरूप प्रतीत होने लगती हैं। वे कहते हैं—

> बरें झालें देवा निघालें दिवाळें। बरी या दुष्काळें पीडा केली।
> अनुतापें तुझें राहिलें चिंतन। जाला हा वमन संवसार ॥×

हे भगवान, मेरा दिवाला निकला, यह बहुत अच्छा हुआ। और अकाल ने मुझे पीड़ा पहुँचाई, यह भी अच्छा हुआ। क्योंकि इस अनुताप के कारण ही मैं तेरा स्मरण करता रहा और इस गृहस्थी से मुझे घृणा होगई।

उन्हें यह विश्वास होने लगा- 'जें कांहीं करितों तें माझें स्वहित-'+ ईश्वर जो कुछ करता है वह मेरे स्वहित के लिये ही। और सांसारिक-प्रपंचों तथा निवृतिमार्ग के विरोध को देख कर उनकी यह राय बनी। 'देव भक्ता लागी करूं नेदी संसार'— ÷ देव अपने भक्तों को गृहस्थी में फंसने नहीं देता।

वे देहू गांव के विठ्ठल मंदिर में एकादशी को हरिकीर्तन करने लगते हैं। संतों के वचन 'विश्वास और आदर से' मनन करने लगते

× ६५५ + २१२५ ÷ ३७३४

हैं। 'निंदा-स्तुति को समान मानकर सांसारिक प्रेम और सुख को त्याग कर आलस्य और लोकलज्जा छोड़ कर बहुमत की अवहेलना कर सत्या-सत्य के निर्णय के लिये अपने मन को साक्षी करते हैं।'* उन्होंने देहू के निकट के पहाड़ों में जाकर एकांतवास का आरंभ किया। लता वृक्ष उनके साथी बन गये। 'वृक्षवल्ली आम्हां सोयरे वनचरें।' †

ईश्वर सर्वव्यापी है—ऐसा मानकर उन्होंने अपने मन के भाव को भी व्यापक बनाने का प्रयत्न किया।

जेथें जेथें जासी। तेथें मजचि तूं पाहसी ॥ ‡
ऐसा पसरीन भाव। रिता नाहीं कोणां ठाव ॥

हरिचिंतन ही हरिसेवा है— 'चिंतन हें तुझी सेवा' ‖ ऐसे मानकर वे 'हरि नामरूपी लता पर पक्षिराज' बन गये ¶ और भक्तिरस का माधुर्य तन्मयता से अनुभव करने लगे। पूर्व तैयारी के रूप में उन्होंने 'ज्ञानेश्वरी' और 'एकनाथी भागवत' का मनन जारी रखा। इस स्थिति में उनके मनमें विरक्ति आने लगी। देह के संबंध में उदासीनता बढ़ी। और— 'न मिळो खावया न वाढो संतान। परि हा नारायण कृपा करो'— × भले ही खाने को न मिले, संतान सुख न मिले, पर नारायण की कृपा मुझ पर हो। इस प्रकार वे मन में सोचने लगे और इसी प्रकार की वाणी उन के मुख से निकलने लगी। इस स्थिति में ऐसे लोग जिन के हृदय में हरिकी इच्छा है—'माझिये जातीचे'× मेरी जाति के लोग मुझे मिलें, ऐसी अभिलाषा इनके मन में प्रकट होने लगी। उनको यह अनुभूति होने लगी—जो संत उनको परमार्थ में निरंतर जागृत रखते हैं, प्रोत्साहन देते हैं, उनकी संभाल रखते हैं, उनके उपकार से हम साक्षात् आत्मार्पण करके भी मुक्त नहीं हो सकते।

काय सांगों आतां संतांचे उपकार। मज निरंतर जागविती ॥
काय द्यावें त्यांशीं व्हावें उतराई। ठेवितां हा पायीं जीव थोड़ा ॥÷

नैराश्य की अवस्था

ईश्वर-प्राप्ति का आनंद तुकाराम को आसानी से मिलने वाला नहीं था। वास्तव में ईश्वर-प्राप्ति नहीं हुई है इसके लिये उनका चित्त

---

* १८०४ और ३३८५ † २१४० ‡ ३७८३ ‖ १८५०
¶ ३३८३ × २१७५ + २२५८ ÷ २२०१

स्वयं ही साक्षी था। "माझें चित्त मज जवळीच ग्वाही। तुज मज नाहीं भेटी ऐसें"+

"नाहीं आलें अनुभवा। आधींच मी देवा कैंचा नाचूं ?"*

तेरी भेंट का अनुभव करने से पहले मैं कैसे नाचूं ? प्रयत्नों की पराकाष्ठा के बाद भी जब उन्हें ईश्वर-दर्शन नहीं हुआ तो उनके मन में तरह तरह के विकल्प उत्पन्न होने लगे और वे एक प्रकार की प्रगतिहीनता अनुभव करने लगे। साधक अवस्था के दृढ़निश्चय का स्थान अब तीव्र नैराश्य ने ले लिया। जन्म से अंतर्मुखी वृत्ति होने के कारण उनकी बेचैनी बहुत बढ़ गई। प्रो० रा. द. रानडे के शब्दों में इसे "आत्मा की अंध रात्रि" (The Dark Night of the Soul) कह सकते हैं। यह आत्मज्ञान रूपी प्रभात के पूर्व का अंधकार था। किन्तु तुकाराम को यह स्थिति बहुत ही कठिन मालूम पड़ी। बढ़ती हुई नैराश्य अवस्था में वे पूछने लगे—

"देवा कृपा करील मज। काय लाज राखील।?" §

ईश्वर मुझ पर कृपा करेगा क्या ? मेरी लज्जा रखेगा क्या ?

इस प्रकार के प्रश्न उनके मन में लगातार उठने लगे।

"स्वप्नीं तोही कैसा न पडसी डोळां।

स्वप्नी आतां दावीं पाय। पाण्डुरंगे माय कृपावंते !" ×

स्वप्न में भी आपके दर्शन मुझे क्यों नहीं होते ? स्वप्न में तो आप अपने चरणों के दर्शन कराइये—इस प्रकार वे पाण्डुरंग से प्रार्थना करने लगे। उन्हें ईश्वर का दर्शन जागृत अवस्था में तो क्या स्वप्नावस्था में भी नहीं होता था। इस कारण वे स्वयं को अत्यंत असहाय अनुभव करने लगे। उनके मन में गहरे पश्चाताप की भावना भी प्रबल होने लगी। "मुझ में भक्ति बाहर से है। लेकिन अन्दर से गृहस्थ जैसा हूँ। अतः भगवान मुझ से दूर हैं। मेरा मन ही मेरा घात कर रहा है।"

"नाहीं बीज मूळ हातां आलें" △

भक्ति का बीजमूल अब तक मेरे हाथ नहीं आया।

"माझे मज कळों येती अवगुण। काय करूं मन अनावर।

इन्द्रियाधीन झालों देवा" ÷—मैं अपने अवगुणों से परिचित हूँ।

+१८९२ *१२३० §२०७६ ×८ △१८९७ ÷१५६८

लेकिन क्या करूं। मेरा मन बेकाबू है और मैं इंद्रियाधीन बन गया हूं। "मुझसे–'अंतरीचा त्याग'–आंतरिक त्याग नहीं हुआ, तब इस बाहरी भक्ति से क्या लाभ। वास्तव में मेरी अवस्था–बहुरुप्याचें परी–बहुरूपिया की तरह हुई है।"= इस प्रकार के उद्‌गार उनके काव्य में बार बार प्रगट हुये हैं।

'मन माझें चपळ न राहे निश्चळ !
घड़ी अेकी पळ स्थिर नाहीं ! माझा न चले सायास "×

मेरा मन चंचल है, वह घड़ीभर तो क्या, पल भर तक शांत नहीं रहता। अभी मेरा कुछ नहीं वस चलता !

"दुष्टाचरण ग्वाही माझें मन।'÷
मेरे दुष्ट आचरण के लिये मेरा ही मन साक्षी है।

"मागें जैसा होता माझे अंगीं भाव। तैसा अेक आतां ठाव नाहीं।"+
पहले मेरे मन में जैसा भाव था अब वैसा नहीं रहा।

"पायीं महत्वाची पडिली शृंखला। वाढली हे निद्रा आळस बहु।"¶
मेरे पैरों में बड़प्पन की शृंखला पड़ी है और निद्रा तथा आलस्य काफी बढ़ गया है।

"पापा नाहीं पार$"—मेरे पाप की सचमुच कोई सीमा नहीं है।
"आतां गुणदोष काय विचारिसी। मी तो आहे रासी पातकाची।"*
मेरे अवगुण की तो पूछो ही मत। मैं पातकों की राशि हूँ।

"तुज दिला देह अजुनी वागवितो भय‡"—देहभाव तेरे चरणों में अर्पित करने के बाद भी मैं देहभय रखता हूँ।

"काम क्रोधें नाहीं सोडिलें आसन"‖ काम क्रोधादि विकारों ने मुझे अभी तक छोड़ा नहीं है।

"हीन माझी याति वरी स्तुति केली संतीं। अंगी वसें पाहूं गर्वं" *
मेरी जाति हीन है। बल्कि संतों की प्रशंसा से मैं अभिमान करने लगा हूँ।

"आम्ही भावहीन जीव। म्हणुन देव दुरें दूर।" †
हम भावहीन हैं इसलिये देव हम से दूर है।

= २०५४ × १५६४ ÷ १८५७ + २११० ¶ १५६१ $ २२६०
* १३०९ ‡ १८४८ ‖ १५१७ * १९२७ † २००३

इस प्रकार के आत्म-निवेदन तुकाराम की वाणी में यत्र तत्र विखरे हुये मिलते हैं।

"प्राण हा सकळ होतो=कासावीस। जीवना वीण मत्स्य तया परी।" ‡
जीवना वेगळी मासोळी। तैसा तुका तळमळी।"=
पानी के बाहर मछली की तरह मैं तड़पता हूँ।

"जरी मोकलीशी आतां। तरी मी अनंता वाया गेलों।"₽
अभी तू अगर मुझे छोड़ दे तो मैं बेकार ही हो जाऊंगा।
मुझ से अधर्माचरण बहुत ही हुआ है। लेकिन—

"आचरावें दोष हें आम्हा उचित। तारावें पतित तुमचें तें।।$
दोष करना हमारे लिये सहज है, किन्तु आपके लिये उद्धार करना ही उचित होगा।

"होईल कीं न होय तुज माझा आठव। पडिला संदेह हाचि मज।"¶
तुझे मेरा स्मरण होगा या नहीं ऐसा मुझे संदेह होता है।

"तुम्हां आम्हां तुटी होईल यावरी। असें मज हरि दिसतसें।"+
आपका और मेरा वियोग होगा ऐसा मुझे दिखता है।

"करावा वर्षाव। तृषाकांत झाला जीव"×
मैं तृषाक्रांत हो गया हूँ। मुझ पर तू अपनी कृपा की वर्षा कर।

"तुझे दारीचा कुतरा। नको मोकलूं दातारा"÷
मैं तो तेरे घर का कुत्ता हूँ। मुझे तू दूर मत कर। बल्कि—

"आतां मज राखें आपुलिया वळें" ‖
तूं अपने बल से मेरी रक्षा कर। अर्थात् तेरे ही बल से मेरी रक्षा हो सकती है।

"तळमळी चित्त घातलें खापरीं। फुटतसें परी लाहीचिया।" *
खील को भूंजते समय जैसा वह छटपटाती है उसी प्रकार मेरा चित्त तेरे लिये छटपटा रहा है।

"पुरली धांव कडिये घेईं। पुढें पायीं न चलवी।
बोलवेना ! लावी स्तना ईश्वरें। † हे विठामाई। चलते-चलते मैं अब थक गया हूँ। मुझसे अब आगे चला नहीं जाता। मुझे गोदी में ले

‡ १६६८ = ८४३ ₽ १५४८ $ १२९२ ¶ १६४५ + १२३५
× ११९९ ÷ १६८९ ‖ १५६५ * ५९२ † १७८९

लो। मुझ से अब कुछ बोला भी नहीं जाता। मुझे अपना प्रेमरूपी स्तन्य पिला।

"मज नाहीं धीर तुम्ही न करा अंगीकार"*

आप मेरा अंगीकार नहीं करेंगे तो मैं धैर्य धारण नहीं कर सकूंगा।

इस प्रकार वे अपनी दयनीय स्थिति का तरह तरह से वर्णन करके अत्यंत व्याकुलता पूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

वे कहने लगे—

'कई मात माझे ऐकतीं कान। बोलता वचन संतामुखीं।
केला पाण्डुरंगें तुझा अंगीकार। मग होईल धीर माझ्या जीवा !"+

पाण्डुरंग ने तुझे अंगीकार किया है, ऐसे शब्द संतों के मुख से मुझे कब सुनने को मिलेंगे ? तभी मैं धैर्य धारण कर सकूंगा।

वे संतों से प्रार्थना करने लगे कि आप मुझे अपने चरणों से दूर मत रखिये। इतना ही नहीं—

"आठवण तुम्ही द्यावी पाण्डुरंगा। देवा माझी सांगा काकुळती
मज़ तुम्ही निरविल्यावरी। मग मज़ हरि उपेक्षिना।" ÷

भगवान को मेरी याद दिलाइये और उनको मेरी दयनीय स्थिति समझाइये। आप मुझे उनके हाथ सुपुर्द कर दें, तो भगवान मेरी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे।

इतना सब करके भी भगवान के द्वारा अपनी अभिलाषा-पूर्ति न होते देख कर उनके मन में उद्वेग बढ़ने लगा। वे कहने लगे—

देव, तू मुझे अंगीकार नहीं करता है। जिसके कारण 'आतां दोहीं पक्षीं लागले लांछन। देवभक्तपण लाजविले' ₩ तेरा देवत्व और मेरी भक्ति दोनों को लांछन लग गया है।

"कळों आले ऐसे आतां। नाहीं सत्ता तुम्हांसी
तरी वीर्य नाहीं नामा। हा विठ्ठल हीन शक्ति" @

तू और तेरा नाम दोनों व्यर्थ साबित हुए हैं। और तू शक्तिहीन भी है ऐसा मेरे ध्यान में आ चुका है। क्या तू 'पाषाणाची खोळ'—पत्थर के आवरण में छिप कर बैठा है।

---

*१३६७ +१६६६ ÷२२०७ ₩ १५६१ @ १४३७

तू मेरे हृदय में है, फिर भी मेरी वाणी सुन नहीं पाता ? इससे यही साबित होता है "समर्थासी नाहीं उपकार-स्मरण—समर्थों को उपकार का स्मरण नहीं रहता।

"अमुचिया भावें तुज देवपण
तें कां विसरोनि राहिलासी" +

हम भक्तों के कारण ही तुझे देवत्व मिला है। हम भक्तों ने ही तुझे साकार किया है। यह तू भूल गया है।" तेरी उदारता की कीर्ति झूठी मालूम होती है। भिखारी तूं खरा—तू भिखारी है। इसलिये तेरा दास कहलाने में भी मुझे शर्म आती है। अर्थात् "लाज येते मना तुझा म्हणवितां दास" ÷

अंत में वे क्रुद्ध होकर ईश्वर के प्रति शापवाणी तक जा पहुँचे। †

"तुझा संग पुरे, संगपुरे। संगती पुरे विठोवा !" विठोबा तेरा संग अब खतम। हमारी व्याकुलता से, तड़प से, तेरा सर्वनाश हो जायगा।

'काय करूं नास जीवित्वाचा' §
'करितों जीवा नास तुजसाठी' ‡

तुकाराम आत्मघात की भाषा भी बोलने लगे। 'जीवित्वाचा नाश—' यह भी उनके मन में आने लगा। उनके लिये देव—'नाहीं ऐसा'—नहीं है, यह भी विचार आने लगा। अंत में भगवान की निंदा-स्तुति तो उन्होंने छोड़ ही दी। उसका नाम भी छोड़ दिया और 'असो त्याला असेल' (भगवान) जिसका होगा उसका होने दो, लेकिन "माझेलेखी देव मेला"—मेरे लिये देव मर गया, ऐसी घोषणा भी उन्होंने कर डाली।

सिद्धावस्था

ऐसी परिस्थिति में से गुजरने के बाद 'उपासा सेवटीं अन्नासवें भेटी' * उपवास करने वाले को भोजन मिलने के समान तुकाराम को ईश्वर दर्शन हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। ईश्वर दर्शन से उनके मन में जो नैराश्य के भाव थे वे सब दूर होगये। जिस दिन के लिये उन्होंने सब कष्ट उठाये थे वह—'शेवटचा दिस गोड' × आखिर का दिन सफल हुआ। यह देखकर वे 'धन्य हुए।' "देहभाव पालटली काया। पडली छाया ब्रह्मींची" ‖

+ १२७२ ÷ ४५४ † १२१५ § १११८ ‡ १३१५ * ६६१
‖ १८१२ × १३१५

ब्रह्म की छाया पड़ने से देहभाव भी बदल गया। "जहां जाऊं वहां देव अपने साथ ही है"—यह देख कर वे 'विठोबाचे वेडे"—विठोबा के लिये पागल होगये और आनंद से नाचने गाने लगे। अपने पारमार्थिक अनुभवों का वर्णन तुकाराम ने तरह तरह से किया है। वे कहते है— "काम क्रोध केलें घर रितें। देह भरला विठ्ठलें ¶ अर्थात् जब काम क्रोध ने घर (देह) खाली किया तब वह विठ्ठल से भर गया। 'देह प्रत्यक्ष झाला देव'—देह देवस्वरूप बना। "झाला स्वयमेव पाण्डुरंग"—स्वयं पाण्डुरंग स्वरूप बन गये। "अंगीं ब्रह्मरस ठसावला"+ शरीर में ब्रह्मरस भर गया।

"सकळ अिंद्रियें झालीं ब्रह्मरूप"* सारी इंद्रियें ब्रह्मरूप हुई।

"संचित-प्रारब्ध-क्रियमाण अवघा झाला नारायण"* संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण सब नारायणस्वरूप हुआ। इस प्रकार का अनुभव उन्हें होने लगा।

उन्हें सारी सृष्टि हरिरूप दिखाई देने लगी।—"दिसे हरिरूप सृष्टि"= "सर्व आनंदाची सृष्टि झाली"—∴ सारी सृष्टि आनंदपूर्ण बन गई।

"आनंदाच्या कोटीं सांठवल्या पोटीं"∞ अंतःकरण 'कोटि आनंद' से परिपूर्ण हुआ।

"अंतरीची ज्योती प्रकाशली दीप्ति। मुळींची ती होती आच्छादली"× जो पहले आच्छादित थी, वह ज्योति अब अंतःकरण में उद्दीप्त हुई।

"नामरूप भेद सारी गोविंदरूप हुये। वे "जनीं जनार्दन"—"विश्वीं विश्वंभर"—"भूतीं भगवंत"—देखने लगे।

"पाहे तिकडे मायबाप विठ्ठल रखुमाई"÷ जहां देखें वहां मा-बाप विठ्ठल रखुमाई।

"रिता नाहीं कोणा ठाव"—उससे खाली कोई जगह नहीं है।

सर्वत्र आत्मदर्शन होने से स्व, ईश्वर और विश्व यह सब उनके लिये एक रूप हो गया। उन्हें पारमार्थिक अद्वैतानुभूति हुई।

हरिनाम उनके मन में इतना समा गया कि तुकाराम की वाणी उनके लिये बेकाबू हो गई। "माझी मज झाली अनावर वाचा। छंद या नामाचा घेतला से"†

१२१३ ¶३३६६ +४०१६ *३९३४ *४००१ =३९८०
∴४०३७ ∞४०१७ ×३९९२ ÷४०३१ †४०१६

इस स्थिति में उदक, गंध, पुष्प, दीप, धूप-पूजाकी सारी सामग्री उनके लिये "रामकृष्ण रूप" हो गई।

"काशियानें पूजा करू केशिराजा"॥ हे केशव, मैं तेरी पूजा किससे करूं। इस तरह के संभ्रम में वे पड़ने लगे। एक प्रकार से उनकी देह अंतर्बाह्य विठ्ठल से व्याप्त हो गई।

"हरि। आम्हां माजी किडा करी"—हरि हममें क्रीड़ा करता है "तूं बोलसी माझ्या मुखें"—तू ही मेरे मुख से बोलता है।

"मीचि मज व्यालों। पोटा आपुलिया आलों"§

मैंने ही स्वयं को जन्म दिया। मैं अपने पेट में से ही आया।

"आपुलें मरण पाहिलें म्यां डोळां"—अपनी मृत्यु मैंने अपनी आंखों से देखी।

तुकाराम ने सब ओर

"आनंदाचे डोहीं आनंद तरंग। आनंदचि अंग आनंदाचे।"¶ आनंद के दह में आनंद की तरंगे और आनंद ही आनंद का शरीर—अनुभव किया।

उपदेश

आत्मसाक्षात्कार के बाद तुकाराम के मुख से जो उपदेशवाणी निकली उसका महत्व कुछ निराला ही है। आत्मसाक्षात्कार का तेज उनके शरीर पर और स्वानुभव का रंग उनकी वाणी पर, इसके परिणाम स्वरूप उनके उपदेश अवश्य ही प्रभावोत्पादक हुये होंगे। जैसा श्री पांगारकर कहते हैं—'देहू में एक नया विद्यापीठ प्रारंभ हुआ। और उसके सूत्रधार तुकाराम ने पंद्रह-बीस वर्ष अक्षरश: 'मेघवृष्टी नें'+ मेघवृष्टि से उपदेश किया।' मेघवृष्टि थी—तो भी 'अधिकार तैसा करूं उपदेश-साहे ओझें त्यास तेंचि द्यावें'※ जिसका जैसा अधिकार उसे वैसा उपदेश किया जाय। जो जितना बोझा उठा सके उसे उतना ही दिया जाय।

'वंदीन मी भूतें आतां अवघींची समस्तें।
तुमची करीन भावना पदोपदीं नारायणा।'=

अब मैं भूतमात्र का वंदन करूंगा। और उस वक्त पग पग पर (भूतमात्र में) आप ही हैं ऐसी मैं कल्पना करूंगा।

॥ ३७७९ § २१६८ ¶ ३९५२ + ३६२५ ※ ३५२५ = ३७८२

तुकाराम के सामने—'बहुतां छंदाचें बहु जन'+ नाना प्रकार के नाना लोग थे। उन्हें अपने अधिकार के अनुसार उपदेश देने का काम तुकाराम ने तत्परता से किया। 'अधिकार तैसा दावियेला मार्ग'

'अवध्या वाटा क्षीण झाल्या'÷ 'नाश केला शब्दज्ञानें'।

साधना के सारे मार्ग नष्ट हो गये हैं।

शब्दज्ञान ने नाश किया। यह देख कर तुकाराम का मन बहुत व्यथित होता था। इसीलिये वे लोगों को 'नीत'—नीति का उपदेश देने में लग गये। इसमें उन्होंने सिर्फ सत्य को प्रमाण माना है और तर्क-वितर्क की परवाह न करके सत्य और असत्य का निर्णय बहुत कठोरता से करने का प्रयत्न किया है।

तुकाराम ने ईश्वर प्रेरणा से भक्ति की घोषणा की थी। अतः उन्हें क्रोध की परवाह नहीं थी। मृदूनि कुसुमादपि—'मऊ मेणाहुनी$ तुकाराम दंभ और भक्ति हीन पाण्डित्य पर प्रहार करते समय वज्रादपि कठोराणि अर्थात् 'कठिण वज्राहुनी' ×—हो गये थे। अहंकारी, अनुभवशून्य और वाचाल पण्डितों के विरुद्ध तुकाराम ने विशुद्ध भक्तिमार्ग का झण्डा खड़ा किया। अहंकार-युक्त पाण्डित्य के विषय में वे कहते हैं—

'कोडियाचें गोरेपण। ऐसे अहंकारी ज्ञान' *—अहंकार पूर्ण ज्ञान कोढ द्वारा प्राप्त हुए गोरेपन जैसा है।

उन्होंने भक्ति का दिखावा करने वाले और पेट के पीछे पड़े हुए संतों का भी निष्ठुरता तथा कठोरता के साथ तिरस्कार किया।

'अवघे पोटासाठीं सोंग। तेथें कैचा पाण्डुरंग'—सारा ढोंग पेट के लिये ही है। फिर वहां पाण्डुरंग कहां?

जिनका—'पिण्डाचें पाळण'—शरीरपुष्टि ही धर्म बन गया है

'तोंडी तंबाकुची नळी'‖—मुँह से चिलम लगी रहती है और जो

'कथा करूनियां दावी प्रेमकळा। अंतरीं जिव्हाळा कुकर्माचा'†—कथा करते समय ईश्वर प्रेम का प्रदर्शन और अंतर में प्रेम विषयों का जिनका 'जीव यही देव, भोजन यही भक्ति और मृत्यु यही मुक्ति' "जीव तोचि देव भोजन ते भक्ति मरण तेचि मुक्ति" ∵ ऐसे ढोंगी संतों को उन्होंने—'श्वान, सूकर' की उपमा दी है। ऐसे कलियुग में भक्तिमार्ग ही एकमेव उपाय है, ऐसे बताते हुए वे कहते हैं—

+ ५४२ ÷ ३५१२ $२१०८ * २८५६ ‖ २८३७ † २८२६ ∵ २८५०

'पिट्टूं भक्तीचा डांगोरा। कळी काळासी दरारा'=—कलियुग को रौब दिखाने के लिये हम भक्ति की डौण्डी पीटें।

'देतों तीक्ष्ण उत्तरें। पुढें व्हावयासी बरें'×—तुम्हारा कल्याण हो इसलिये मैं 'तीक्ष्ण उत्तरें' देता हूँ।

तुकाराम के जमाने में जो 'गुरुडम' चल रही थी उसका उन्होंने कठोर शब्दों में निषेध किया है।

'शिष्याची जो नेघे सेवा। मानी देवा सारखे।
त्याचे खरें ब्रह्मज्ञान'+—अर्थात् जो शिष्य से सेवा नहीं लेता है बल्कि उसको देवस्वरूप मानता है, उसका ही ब्रह्मज्ञान सच्चा है।

'गुरुशिष्यपण हें तो अधम लक्षण।
भूतीं नारायण खरा। आप तैसा चि दुसरा'—*
'गुरुत्व और शिष्यत्व का भेद-यह नीचता है। भूतमात्र में नारायण है। और अपने जैसा ही दूसरा है।'

किन्तु तुकाराम के सद्हेतु के बारे में किसी को शंका नहीं हो सकती, क्योंकि उन्होंने अपनी भूमिका बार बार स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

'बोलिलों तों कांहीं तुमचिया हितां।
'वचन नेणतां क्षमा कीजे'‡
'नका धरूं कोणी। राग वचनाचा मनीं'÷
जो कुछ मैंने कहा वह आपके हित के लिये ही। आपको न रुचा हो तो क्षमा करें। मैंने निंदा करने की दृष्टि से कुछ नहीं कहा। इसलिये कोई अपने मन में मेरे वचनों के प्रति क्रुद्ध न हों।

"बोलिलें जैसे बोलविलें देवें। माझे तुम्हा ठावें जाती कुळ"†
मुझे भगवान ने जिस तरह बुलवाया वैसे मैं बोला। आप लोगों को तो मालूम ही है कि मेरी जाति-कुल क्या है।

इस प्रकार उन्होंने नम्रता पूर्वक अपने शूद्रकुल को स्वीकार किया है और यह कह कर भी उन्होंने ज्ञान की अल्पता और भाषा की ग्रामीणता के लिये भी क्षमायाचना की है। उन्होंने जो कुछ कहा कारुण्य-भावना से ही कहा।

=३३९६ ×२१२० +२७६० *३२८० ‡२९४७ ÷२८१६ †२२४८

'बुडतां हे जन न देखवे डोळां। येतो कळवळा म्हणऊनि।' ∴

आप लोग डूबते हैं यह मुझ से देखा नहीं जाता, इसलिये मेरा मन व्यथित होता है।

किन्तु यह सब कह कर भी अंत में तुकाराम निराग्रही बुद्धि से यह भी कह देते हैं कि—'सुख वाटे मनीं' जिससे आपको सुख मिले, जो आपको रुचे वही करें।

दंभ तथा पाखण्ड का यह खण्डन एक तरह से उपदेश ही है। समाज में सड़ी-गली कल्पनाओं, संस्थाओं आदि का निराकरण करके भक्तिमार्ग का प्रसार तुकाराम ने किया।

तुकाराम प्रारब्धवादी मालूम होते हैं। प्रारब्ध की गति—नकळे—आकलन नहीं होती है, ऐसी विचित्र है। संचित के बिना भोग प्राप्त नहीं होते हैं। ईश्वर के मनमें जब आता है तब उससंबंध में किसी का कुछ नहीं चलता।

"देह आहे प्रारब्धाधीन" ॥

देह प्रारब्धकर्म के हाथ में है और हम काल की कैद में रहते हैं, ऐसी परिस्थिति में मनमें दुखी रहकर अपने प्रारब्ध के अतिरिक्त दूसरों पर क्रोध करने से क्या लाभ ?

तुकाराम के उपदेश इस भूमिका पर हैं। अतः उन्होंने संसार का जो चित्र सामने रखा है वह निराशा और उद्वेग से परिपूर्ण है।

'नव्हे आराणुक संसाराचे हातीं'।—संसार से सुख नहीं मिलता। यह समझ कर भक्तिमार्ग को स्वीकार करना चाहिये—यह तुकाराम के उपदेश का सार मालूम होता है।

यद्यपि तुकाराम प्रारब्धवादी तथा निवृत्तिवादी थे फिर भी गृहस्थी छोड़ो—ऐसा उन्होंने कहीं नहीं कहा। गृहस्थ के प्रपंच को परमार्थ के मार्ग में न आने दिया जाय—इतना ही उन का कहना है।

'विधी ने सेवन'—विधि से सेवन यह

'विषयत्यागातें समान'—विषय त्याग के समान है। यही नहीं तुकाराम के विचार से—अविचारी त्याग भोग को अधिक प्रज्वलित करता है अतः 'तुका म्हणे मन उन्मन जो होय। तों वरी हे सोय विधि

∴ २६४६ ॥ १५३१ ।१०१२ ÷ ३४३४

पाळी→।' मन जब तक उन्मन नहीं हुआ, तब तक विधि-निषेध के लिये अवश्य गुंजाइश रखी जाय—ऐसा उन का मानना था।

त्यागें भोग माझ्या येतील अंतरा। मग मी दातारा काय करूं।†

मेरे मन में त्याग से भोग उत्पन्न हो जाय तो हे भगवान, मैं क्या करूं ?

'भोगें त्याग व त्यागें भोग'=—भोग में त्याग और त्याग में भोग-यह तुकाराम के धर्म का मर्म प्रतीत होता है। लौकिक व्यवहार न छोड़ कर परब्रह्म में चित्त रखना, "भूतमात्र का मत्सर न करना यह 'सर्वेश्वर-पूजन' का मर्म है"+—यह समझ कर संसार में रहें—तुकाराम का यह स्पष्ट उपदेश है।

'ठेविलें अनंते। तैसेचि रहावें। चित्तीं असों द्यावें समाधान'∵—अनंत (ईश्वर) जिस अवस्था में रखे वैसे रहें और उसी से चित्त में समाधान रहे। इस प्रकार की भाषा उन के मुख में बार बार सुनाई पड़ती है।

"कां रे नाशिवंतासाठीं। देवासवें तुटी करितोसि" ÷ नाशवान के खातिर ईश्वर को दूर मत कीजिये—यह उनका गृहस्थों के लिये कथन है। "एक शेर अन्नाचाड" ‖ तुम्हें सिर्फ एक सेर अनाज की जरूरत है। फिर अधिक तृष्णा क्यों बढाते हो ?

'जन हे सुखाचे दिल्या घेतल्याचे × — लोग तो अपने सुख (स्वार्थ) के लेन देन के लिये ही हैं। इसलिये उन पर अवलंबित न रह कर परमार्थ का अनुगमन करो—ऐसा कहने में निष्क्रियता या दुर्बलता नहीं है, बल्कि विवेक और सावधानी है। इस भूमिका पर तुकाराम का नीतितत्व स्थित है। और इसलिये वह परमार्थपरक है।

'तुला सोडविना कोणी। एका चक्रपाणी वांचोनियां।
नको नको मना गुंतूं माया जाळीं'*

एक चक्रपाणि के सिवाय कोई भी मुक्ति देने वाला नहीं है—यह समझ कर माया जाल में फंसने से बचो। इन्द्रियों की दौड़ को रोक कर

'एकमन अवध्या भाण्डवल'‡—सब सिद्धियों की पूंजी मन को वश करो। 'निजतृप्ति के लिये फल-फूल से लदी हुई हरिनाम रूपी लता पर पक्षिराज बनो।'

→ २७६८ † १८५६ = ३२२८ + ३८७९ ∵ ३३३५ ÷ २६८६ ‖ २९९२ × ८७३ * ३३९१ ‡ ३६३२

'काळ जवळीच उभा'= —काल हमेशा पास ही है

'नाशिवंत देह नासेल हा जाणा'÷—देह नष्ट होगी इस का ख्याल प्रतिक्षण रखो। और परमार्थ के लिये उतावले रह कर स्वर्ण घड़ी प्राप्त कर लो।

"तांतड़ी ते करी म्हणऊनि तांतड़ी
साधिली ती घड़ी सोनियाची" †
'वहु वोलों जातां म्हणती हा वाचाळ।
न वोलतां सकळ म्हणती गर्वी॥
ऐसा हा लौकिक कदा राखवेना' ×

बहुत बोलें तो लोग वाचाल कहते हैं और कम बोलें तो लोग अभिमानी कहते हैं। इस तरह लोकमत का पूर्णतया समाधान नहीं किया जा सकता।

'धन मेळवूनि कोटि। सवें न येरे लंगोटी'। *
'शेवटीं गोवऱ्या सांगाती'

धन संग्रह करके करोड़पति बन जाय फिर भी आखिर तो लंगोटी भी साथ नहीं चलेगी। आखिर उपले ही साथी हैं।

'नाहीं सवें येता संचितावेगळा'।–

संचित के अतिरिक्त आखिर दूसरा कोई भी साथ नहीं चलता। यह शरीर जो सिर्फ–'पंचभूतांचा मेळा'–पंचभूतों का मेला है इसके लिये अहंकार क्यों रखते हैं?

"वाटे या जनाचे थोर वा आश्चर्य? काय मानूनियां राहिली निश्चिंती?+

क्या समझ कर ये लोग इतने निश्चिंत रहते हैं, इसका उनको बड़ा आश्चर्य मालूम होता है। फिर भी आखिर वे—"सकळांच्या पायां माझे दंडवत्।"$ सबके चरणों में दण्डवत् करके व्याकुलता पूर्वक प्रार्थना करते हैं—

'नका करू नाश आयुष्याचा। आपुलालें चित्त शुद्ध करा'॥$

अपनी आयु को व्यर्थ न गवांओ। अपना चित्त शुद्ध करो।

तुकाराम ने दया, क्षमा, शांति आदि नैतिक गुणों पर विशेष जोर दिया है।

=२६६६ ÷२४८२ †२७०० ×२३४६ *२६६० –२७३८ +२७११ २७७१

'दया क्षमा शांति । तेथें देवाची वसति ।'*

पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म इनके संबंध में उनकी कल्पना रूढ नहीं है, बल्कि परमार्थ पोषक है ।

देव तीर्थ येर दिसे जया ओस । तोचि तया दोष जाणतिया ।+
तुका म्हणे विश्वंभराअैसें वर्म । चुकलिया धर्म अवघे मिथ्या ।''

'सर्वस्वाचा त्याग । सदा तों सोहळा' ० सर्वस्व (अहंता) का त्याग जिसने किया है वह सदा के लिये पवित्र है ।

"परस्त्री और परद्रव्य से जो अलिप्त है वही शुद्ध है । परोपकारी ही पुण्य और परपीडा ही पाप । सत्संग ही स्वर्गवास और स्वैराचार ही नरक ।"❀ इस प्रकार का उपदेश वे बराबर देते हैं और उनके सारे नैतिक उपदेशों का अधिष्ठान परमार्थ है ।

परमार्थ के लिये अभ्यास व साधन जितने आवश्यक हैं उतना ही लज्जा का त्याग भी । इसलिये उन्होंने इन दोनों का विवेचन परमार्थ बुद्धि से किया है ।

साधक को आगे बढने में प्रोत्साहन देने और पीछे हटते समय संभालने के लिये तुकाराम जैसा स्वानुभव के आधार पर परमार्थ मार्ग का विवेचक तथा अधिकारी और कौन हो सकता है । अनुभव की वाणी में कुछ और ही विशेपता होती है । जिन संकटों का मुकाबला करके स्वयं पूर्णत्व की ओर बढे हैं उनके द्वारा किया हुआ परमार्थ का निरूपण साधकों के लिये निश्चय ही बहुत मूल्यवान है । तुकाराम के शब्दों में भक्तिरूपी बीज सुक्षेत्र में बोया जाय और उसे सुनीति रूपी जल से सींचा जाय, तभी परमार्थ रूपी वृक्ष उगता है– और वह अनुभव रूपी फल फूलों से युक्त होता है । यह राजमार्ग है । 'मारगी बहुत । याचि गेले साधुसंत$ अनेक संत इस मार्ग से आगे बढे हैं । इस मार्ग पर चलने से ईश्वर प्राप्ति के लिये ।

"न लागती सायास जावे वनांतरा"¶ = जंगल में जाने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि ईश्वर स्वयं हमारे घर—"आइतां आला घर पुसोनि"$

· ईश्वर तीर्थ क्षेत्र में ही है, और जगह नहीं है—ऐसा जो मानते हैं उनके ज्ञानमें दोष है । ईश्वर सर्वत्र है—इस मर्म को नहीं जानें, तो सारे धर्म मिथ्या ही हैं ।

*२४२९ +२९३० ० ३८२५ ❀२७७४ ¶२४५५ $३६९८

चला आता है। संभवतः इसी संदर्भ में तुकाराम ने भक्ति मार्ग को सोपें वर्म-सुलभमार्ग कहा होगा।

दूसरी दृष्टि से भक्ति मार्ग कठिन भी है।

"मना पाहिजे अंकुश। नित्य नवा दिस जागृतीचा"† मन पर अंकुश हो तो ही नित्य नया दिन आयेगा। हृदय में अनुताप हो तो ही ब्रह्मज्ञान संभव है।

'रात्रंदिन आम्हा युद्धाचा प्रसंग। अंतर्बाह्य जग आणि मन॥'×

अंतर्बाह्य जगत और मन—इनका युद्ध प्रसंग रात दिन चलता है अतः यह भक्ति मार्ग बहुत कठिन है।

नाहीं देवापाशीं मोक्षाचें गांठोड़ें। आणूनि निराळें द्यावें हातीं।
इंदियांचा जय साधूनियां मन। निर्विषय करणें असें येथें॥+

भगवान के पास मुक्ति की गांठ बंधी हुई नहीं रखी है जो वह अलग से लाकर आपको हाथ में दे देगा। उसके लिये इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके मन को निर्विषय करना होता है।

"व्हावें देहासीं उदार। रखुमादेवीवर जोडावया"=

रखुमादेवीवर—विठोबा प्राप्त करने के लिये देह की परवाह नहीं करनी चाहिये।

प्रयत्नवाद पर जोर देते हुए वे आगे कहते हैं—

'असाध्य तें साध्य करितां सायास।'÷

प्रयत्नों से असाध्य भी साध्य हो जाता है।

'सर्वस्वासी मुकावें। तेणें हरिसी जिकावें।
अर्थ प्राण जीवें देहत्याग'‖

अर्थात् अर्थ, प्राण, जीव, देह आदि सबका त्याग करें तभी हरि को जीत सकते हैं।

तुकाराम का मानना है—

'साधकाची दशा उदास असावी। उपाधि नसावी अंतर्बाही।
लोलुप्यता काय निद्रेते जिकावे। भोजनाकरावे परिमित।
एकांतीं लोकांती स्त्रियांशीं भाषण। प्राण गेल्या जाण बोलों नये।*
'निर्वाहापुरतें अन्न आच्छादन। 'हृदयीं नारायण सांठवावा' ‡

---

† ३४१३ × १=६२ + ५२७ =२७६६ ÷ ३२४७ ‖ २७२६
* २७२४ ‡ २७२५

साधक की वृत्ति उदास होनी चाहिये। उसे बाहरी आडंबर का पूरी तरह त्याग करना चाहिये। विषय-लोलुपता ही नहीं, बल्कि निद्रातक पर भी उसे विजय प्राप्त करनी होगी। भोजन परिमित करना चाहिये। उसे चाहिये कि एकांत में अथवा दूसरों के सामने भी स्त्री-संगति को टाले और निर्वाहमात्र के लिये यथावश्यक अन्न और वस्त्र रख कर चित्त को नारायण में लगा दे।

सांसारिक कीर्ति को वसन के समान त्याज्य माने और विठोवा के लिये एकांत में रहे। मन की एकाग्रता हो साधक की समग्र पूंजी है। अतः वह सांसारिक प्रपंच में न फंसे, बल्कि अपनी वृत्तियों को ईश्वर पर केन्द्रित कर दे।

तुकाराम के विचार से 'विष्णुमय जग, यही वैष्णवों का धर्म है'÷ और निर्वैर होना ही सभी साधनों का आधार है।†

'भूतीं भगवंत'—भूतमात्र में ईश्वर, इस भावना से साधक को भूतमात्र के प्रति नम्र बनना चाहिये।

जन्मा आलियाचें फळ। स्मरावा गोपाळ तेंचि खरें ∴

जन्म लिया ही है तो हरिदास बन कर ईश्वर के प्रसाद को प्राप्त करे और अ नन्दें आनन्द-आनन्द से आनन्द बढ़ाये। इस प्रकार का उपदेश साधकों को तुकाराम ने दिया है।

तुकाराम परमार्थमार्ग में भेद और विषमता को स्थान नहीं देते थे। भक्तिमार्ग का महत्व बताते हुये वे कहते हैं—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चांडाळाही अधिकार।
बाळें नारी नर आदिकरोनि वेश्याही॥ –

ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक और स्त्री पुरुष बच्चे आदि से लेकर वैश्या तक सब को भक्ति का अधिकार है।

अनन्य भक्तिभाव का महत्व बताते हुए तुकाराम कहते हैं—

'शुद्धभावावीण। जो जो केला तो तो शीण'=

शुद्ध भक्तिभाव के बिना जो भी कुछ किया जाता है, वह सब व्यर्थ का बोझा ढोया जाता है। मनमें अनन्य भक्तिभाव होता है तो उसके लिये नारायण स्वयं भाट (गुणगान करनेवाला) बन जाता है।

÷ ३८७९ † ३६३७ ∴ ३७३७ – २७२२ = ३८३७

"जया चित्तीं जैसा भाव । तया जवळीं तैसा देव" ×

जिसके मनमें जैसा भाव होता है उसके लिये भगवान का रूप भी वैसा ही होता है।

"भक्तिभाव तो चि देवाचा ही देव"=—भक्तिभाव तो भगवान का भी भगवान है।

"चित्तीं नाहीं आस । त्याचा पांडुरंग दास
असे भावताचिये घरी । काम न सांगता करी
तुका म्हणे भावें । देवा सत्ता राववावें"+

—जिनके चित में आशा समूल नष्ट हुई है उनका पांडुरंग दास वनता है। ऐसे भक्तों के घर उनके कहे बिना उनके काम वह करता है। तुकाराम कहते हैं-भाव वल से ईश्वर पर भी हम अपनी सत्ता चलायें।

जिस भक्तिमार्ग से वे स्वयं आगे बढ़े उसका ही वे निरूपण करते हैं, अतः नामस्मरण और सत्संग इन पर उनका विशेष जोर है।

नाम सुख का स्रोत है। उसका कुछ पार नहीं है।

'मुखीं नाम हातीं मोक्ष । ऐसी साक्ष बहुतांची'÷

मुख में नाम रहे तो मोक्ष हाथ लगता है। इसके लिये बहुत लोग साक्षी हैं।

"नाम घेतां कण्ठ शीतळ शरीर । इंद्रिया व्यापार नाडविती"❀

नाम स्मरण से शरीर शांत रहता है और इंद्रियां आकर्षण भूल जाती हैं।

"सोपें वर्म आम्हा सांगितलें संतीं । टाळ दिंडी हातीं धेऊनि नाचा" ‖

हाथ में टाळ डिण्डी लेकर हरिनाम का घोष करना यही भक्ति का सुलभ मार्ग है। यदि साधक—'साता दिवसांचा उपवासी' ‡ अर्थात् सात दिन का भूखा हो

'फुटो हा मस्तक तुटो हे शरीर' ‡

सिर फूट जाय या शरीर नष्ट हो जाय, तो भी उसे हरिनाम छोड़ना नहीं चाहिये।

सत्संग की महिमा तो तुकाराम ने जगह जगह मस्त होकर गाई है। उनका कहना है।

× ३२६८ = ३६६२ + ३७२२ ÷ २५४१ ❀ २५४०
‖ २४५० ‡ २४४६

"काय वाणूं आतां न पुरे ही वाणी । मस्तक चरणीं ठेवितसें"×

संतों की महिमा मैं कैसे वखान करूं ? मेरी यह वाणी अपर्याप्त है। मैं तो उनके चरणों में अपना सिर झुकाता हूँ।

दूसरों के सुख में ही जिनका सुख समाया हुआ है और जिनके मुख से अमृत ही बहता है, ऐसे संतों के चरणों में—

"काया कुरवण्डी करीन"+ मैं अपना सर्वस्व निछावर कर देता हूँ। नामस्मरण की तरह कीर्तन का भी माहात्म्य तुकाराम ने सिद्ध किया है। महाराष्ट्र में कीर्तन से वही अर्थ लिया जाता है जो भारत के अन्य भागों में हरिकथा से।

'यमधर्म सांगें दूतां । तुम्हा नाहीं तेथें सत्ता ।
जेथें होय हरिकथा । सदा घोष नामाचा"=

यमराज अपने दूतों से कहते हैं—जहां हरिकथा और ईश्वर नाम का घोष चलता है, वहां तुम्हारी सत्ता काम नहीं करेगी।

कथा किस प्रकार करनी चाहिये, इसका वर्णन तुकाराम ने बहुत रसपूर्ण ढंग से किया है। उनका कहना है कि कथा इस प्रकार कहनी चाहिये जिससे कीर्तन में तल्लीन होकर "कथेमाजी उभा देव" ▯ या "विठ्ठल कीर्तनामाजी उभा"÷ स्वयं ईश्वर ही हमारे सामने खड़ा हो जाय।

तुकाराम का विचार है कि हरिभक्त अपने अपने कुल तथा देश को पवित्र करने वाले होते हैं।

पवित्र तें कुळ । पावन तो देश । जेथें हरिचे दास जन्म घेती ।"❀

अखण्ड नामोच्चार से उनकी देह पावन होती है और वाणी पुण्यवान होती है।

"पवित्र तो देह । वाणी पुण्यवंत । जो वदे अच्युत सर्वकाळ" †

"जिनके कण्ठ में वैकुण्ठनायक है" ‡ ऐसे भक्त और देव एक ही हो जाते हैं।

देव और भक्त के संबंध का यह वर्णन तुकाराम के मुख से सुनने में विशेष आनंद होता है। हरिभक्त को सत्संग का लाभ मिलने से उसमें अंतर्बाह्य आनंद समाया हुआ रहता है।

× २२०० + २१६२ = २४४१ ▯ २४१४ ÷ २४५४
❀ २३३१ † २२३८ ‡ २२३८

"देवाच्या संबंधें विश्वचि सोयरें"× ईश्वर के साथ संबंध होने से सारे विश्व के लोग संबंधी हो गये।

भक्त दूसरों के सुख-दुःख का अनुभव स्वयं करने लगता है। देह और प्राण की तरह भक्त और ईश्वर एक दूसरे में मिल जाते हैं, लेकिन इस स्थिति तक पहुँचने के पहले उसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। तभी उसे ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है।

"एका बिजा केला नास। मग भोगले कणीस"°

पहले बीज का नाश होगा तभी (अनाज की) बाली प्राप्त होगी। पहले प्राणार्पण करेंगे तब ईश्वर-प्राप्ति होगी।

इस अभिप्राय से तुकाराम कहते हैं कि परमार्थ केवल ऊपरी जोश दिखाने से नहीं सधता है।

"म्हुरा ऐसीं फळें नाहीं। आलीं कांहीं गळतीं
पक्वदशे येती थोडीं। नास आढी वेंचे तों"*

पेड पर जितने मौर आते हैं उतने सब फल नहीं बनते। कुछ गलते हैं, कुछ सड़ते हैं, थोड़े से ही परिपक्व होते हैं।

इसी तरह परमार्थ में भी आखिर का चढाव सबसे मुश्किल होता है। उस पर चढ़ कर ही—"धन्य झालों"‡ मैं धन्य हो गया। ऐसा कहने वाला भक्त विरला ही होता है। "विरळा पावे विरळा पावे"*

कवित्व

काव्य की दृष्टि से भी तुकाराम की वाणी बहुत उच्च कोटि की है। वास्तव में उनके मन का गठन ही काव्यानुकूल था। अन्तःकरण की संवेदनशीलता, सजीव अनुभव, सूक्ष्म निरीक्षण, विवेचनशील बुद्धि, वाणीका माधुर्य और अपने ध्येय के प्रति तादात्म्य, ये सब तुकाराम को कवि बनाने के सच्चे उपादान थे। इन से सज कर तुकाराम का काव्यरत्न भारतीय वाङ्मय में बहुमूल्य बन गया है। उनका सारा काव्य आत्मपरकता और अंतर्मुखीवृत्ति का साक्षी है। एक तरह से उनका काव्य उनके अन्तःकरण की अभिव्यक्ति ही है। तुकाराम बार बार कहते हैं :—

× ३६६३ ° २७९५ * ३१८६ ‡ ३७७८

'आपुलिया बळें नाहीं मी बोलत। सखा कृपावंत वाचा त्याची।+
मैं अपने बल से नहीं बोलता, यह उस कृपालु भगवान की वाणी है।

करितों कवित्व म्हणाल हें कोणी।
नव्हे माझी वाणी पदरींची॥
माझिये युक्तीचा नव्हे हा प्रकार।
मज विश्वंभर बोलवितो॥
काय मी पामर जाणें अर्थ-भेद।
वदवी गोविंद तें चि वदे॥
निमित्त मापासी बैंसविलों आहे।
मी तों कांहीं नव्हे स्वामि-सत्ता॥
तुका म्हणे आहे पाईकचि खरा।
वागवितों मुद्रा नामाची हे।।❀

मैं कवित्व रचना करता हूँ ऐसा कोई कहे। लेकिन यह वाणी मेरी स्वयं की नहीं है। यह सब मेरी बुद्धि के फलस्वरूप नहीं है। मुझसे तो विश्वंभर बुलवाता है। मैं पामर अर्थ-भेद क्या जानूं? जैसे मुझसे गोविंद बुलवाता है उसी तरह मैं बोलता हूँ। जिस प्रकार व्यापारी अनाज के ढेर में से माप कर अनाज डालता है उसी प्रकार ईश्वर के भण्डार में से मापने के निमित्त मुझे यहां बिठाया गया है। मैं कुछ भी नहीं हूँ। सब कुछ ईश्वर-सत्ता से होता है। तुकाराम कहते हैं—उसके नाम की मुद्रा रखने वाला मैं उसका सेवकमात्र हूँ।

"नव्हती माझे बोल जाणा हा निर्धार"

"मी आहे मजूर विठोबाचा।"÷ यह निश्चित समझिये कि ये मेरे शब्द नहीं हैं। मैं तो विठोबा का केवल मजदूर हूँ। मैं तो उसी का भार ढोने वाला श्रमिक हूँ—"मी तव हमाल भारवाही"।☧

तुकाराम की सारी काव्यरचना अभंग छंद में है। कुछ ओवियां, कुछ श्लोक भी हैं। इन में श्लोक बहुत ही कम हैं।

संतकवियों का ध्येय सर्व सामान्य जनता को उनकी भाषा में कहकर भक्तिमार्ग की ओर उन्हें अग्रसर करना था। अतः ज्ञानदेव, एकनाथ और तुकाराम सभी ने लोक प्रचलित रूपकों का आश्रय लिया है।

+ ३६७७ ❀ १९९७ ÷ २३८० ☧ ३७०६

हरिनामवेली पावली विस्तार, फळीं फुलीं भार वोल्हावली ।
तेथें माझ्या मना होई पक्षिराज, साधावया काज तृप्तीचेंया ॥ +

हरिनाम का लता से, और भक्त का पक्षिराज से बांधा हुआ रूपक प्रसिद्ध ही है। उसमें काव्य और अध्यात्म का सुन्दर संगम है।

झाला प्रेत रूप शरीराचा भाव—शीर्षक अभंग में देह का भान छूटने की स्थिति की तुलना उन्होंने शवयात्रा से की है। उसमें तुकाराम का रूपकचातुर्य बहुत उच्चकोटि का बन गया है। वह अभंग इस प्रकार है:—

झाला प्रेत रूप शरीराचा भाव। लक्षियेला ठाव श्मशानींचा ॥
रडती रात्रंदिवस काम क्रोध माया। म्हणती हाय हाय यम धर्म ॥
वैराग्याच्या शेणी लागल्या शरीरा। ज्ञानाग्नि लागला ब्रह्मत्वेसीं ॥
फिरविला घट फोडिला चरणीं। महावाक्य ध्वनि बोंब झाली ॥
दिली तिळांजलि कुळ नाम रूपासी। शरीर ज्याचें त्यासी समर्पिलें ॥
तुका म्हणे रक्षा झाली आपे आप। उजळला दीप गुरुकृपा ॥ ÷

देहभाव (अहंता) मुर्दा होकर पड़ा है। अब उसको (ब्रह्मस्थिति रूपी) श्मशान में ले जाना है। काम, क्रोध, माया रात दिन रो रहीं हैं। यमराज भी 'हाय हाय' करता है। शव के चारों तरफ वैराग्य रूपी उपले लगाये गये हैं। ज्ञानाग्नि जला दी है। अब वह ब्रह्मसात् हो गया। घड़ा घुमाकर ईश्वर के चरणों में फोड़ डाला। 'मैं ब्रह्मरूप हूँ' इस महा-मन्त्र के नारे लगे। कुल—नाम—रूप की तिलांजलि देकर शरीर जिनका था उन्हें समर्पित कर दिया। इस प्रकार 'मैं' (अहंता) की राख हुई और आत्मा की रक्षा हुई। और अपने आप गुरु-कृपा का दीपक जल उठा।

उनका 'आपुलें मरण, पाहिलें म्यां डोळां'‡—यह रूपक भी प्रसिद्ध है। पाईकी के अभंग भी रूपकात्मक हैं। देह का रूपक कंबल से और हरिनाम का रूपक खेत से बांधने में उन्होंने विलक्षण काव्य—चातुर्य का परिचय दिया है। ये रूपक तुकाराम की काव्य रचना के वैशिष्ट्य हैं। उनकी वाणी बहुत लोचदार और वर्णन—पद्धति बहुत सुन्दर और लगभग अतुलनीय है।

तुकाराम जब देहभान भूलकर कीर्तन के रंग में आते थे, तभी यह वाणी उनके मुख से निकलती थी। यही कारण है कि वह अंतर्बाह्य पवित्र है, और काव्यार्थ उनके पीछे पीछे दौड़ता है। प्रेम भक्ति,

+ ३२८३ ÷ ४०५१ ‡ ४०४६

असहायस्थिति, उद्वेग, विफलता आनंद, उपहास, नैराश्य, आत्म बोध, करुणा, व्याकुलता आदि अनेक भाव उनकी वाणी से निकले हैं। ईश्वर दर्शन के लिये प्रतिक्षण व्याकुल होने वाले तुकाराम कहीं कहीं हास्य-विनोद करते हुए भी दिखते हैं।

तुकाराम की शैली सूत्ररूप थी। वे थोड़े शब्दों में बहुत बड़ा अर्थ कह डालते थे। यही कारण है कि उनकी वाणी के बहुत से वचन महाराष्ट्र-साहित्य में सुभाषित बन गये हैं। उनकी सूक्तियां 'शब्दांच्या ओवणींतील रत्नांच्या माळा' शब्दों के धागे में (पिरोयी गयी) रत्नों की माला है। श्री पांगारकर का कथन है कि तुकाराम के सूत्ररूप वचन से मराठी भाषा सम्पन्न हुई है। वाणी और विचार या शब्द और अर्थ दोनों यहां परम रमणीय हैं।

तुकाराम की रचना सिर्फ सुभाषित ही नहीं है, बल्कि उनका सारा काव्य आत्म प्रत्यय में से स्फुरित है, अतः उसकी अमरता में संदेह नहीं है। यह काव्य एक दृष्टि से परम्परागत है तो दूसरी दृष्टि से स्वतंत्र भी है। तुकाराम की वाणी पर यद्यपि ज्ञानदेव और एकनाथ दोनों का बहुत प्रभाव है तथापि बुद्धि की स्वतन्त्रता, वाणी की मार्मिकता और आत्म प्रत्यय तुकाराम के कवित्व का मूल है। यह मानों ईश्वर के प्रसाद का झरना ही है।

हिन्दी रचनाएं *

महाराष्ट्रीय संत हिन्दी के व्यापक प्रभाव से परिचित तथा अत्यंत उदार वृत्ति के थे। उन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत काव्य लिखे हैं। अन्य महाराष्ट्रीय संतों की भांति तुकाराम ने भी हिन्दी में रचनायें की हैं। ये रचनायें मुख्यतः १. गोपियों के प्रेम, २. पाखण्ड-उद्‌घाटन, ३. नीति और भक्ति उपदेश सम्बन्धी हैं।

गोपियों के प्रेम से सम्बन्धित रचनायें मराठी साहित्य में "गौळण" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन होता है। पर इन वर्णनों में हिन्दी रीतिकालीन कवियों की भांति शृंगार की विलासिता का वर्णन नहीं है। उनमें सात्विक प्रेमभाव की ही प्रधानता है। बानगी देखिये:—

* इस सम्बन्ध में देखिये—श्री विनयमोहन शर्मा, : हिन्दी को मराठी संतों की देन—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वारा प्रकाशित।

हरि बिन रहिया न जाए जिहिरा। कब की थाड़ी देख राहा ॥
क्या मेरे लाल कवन चुकी भई। क्या मोह पासिती वेर लगाई ॥
कोई सखी हरि आवे बुलावन। वार हि डारुं उसपर ये तन ॥
तुका प्रभु कब देख पाऊं। पासी आऊं फेर न जाऊं ॥

समाज को ठगनेवाले वेषधारी साधु-सन्यासी तथा फकीरों की उन्होंने खूब खबर ली है। इसमें कबीर की झलक स्पष्ट है।

तुका बरतर 'वस्त्र' बीच्यारा क्या करे रे ज्या को चीत भगवा न होये,
भीतर मैला केऊं मीटे जो परे उपर धोये ॥

\+ + +

जिकिर करो अल्ला की बावा, सबल्यां अंदर मेस।
कहे तुका जो नर बुझे, सोहि भया दरवेस ॥

\+ + +

तुका कुटुंब छोरे लड़के जोरू सीर मुडाये।
जब ये ईछा नहीं मुई, तब तू कीया काये ॥

\+ + +

अपने नीति परक उपदेशों में तुकाराम ने कामनाओं को नष्ट करने पर जोर दिया है।

तुका ईछा मिट गयी तो काहा करे जट पाक।

उन्होंने आंतरिक मेल के विषय में कहा है :

तुका मीलना तो भला मन सु मन मील जाये।
उपर उपर माटी घपणी नेह की कौन बराई ॥

सत्संगति की प्रसंशा में—

तुका संग तीन्हसुं करीये जीनथे सुष दुनाये।
दुर्जन तेरा मुष काला थीता प्रेम घटाये ॥

संतों के प्रति तुकाराम की बड़ी श्रद्धा है—

ज्याका चीत लागा मेरे राम को नाम।
कहे तुका मेरा चीत लागा त्याके पाउं ॥

इस पद्य में तो तुकाराम ने संतों के प्रति अपने विनम्र प्रेम की पराकाष्ठा ही कर दी है।

मेरे राम को नाम ज्यो लेवे वारम्वार।
त्याकें पाऊं मो तन के पैज्यार÷ ॥

÷ जूता

तुकाराम तो अपनी मृत्यु को प्रत्यक्ष देखने वाले संत थे, वे कहते हैं—

कवं मरू पाऊं चरन तुम्हारे। ठाकुर मेरे जीवन प्यारे ॥
जेग डरे ज्याकु सो मोही मीठा। मरिण उर अनंद माही पैठा ॥

सांसारिक मायाजाल के सम्बन्ध में उनका कथन स्पष्ट और सरल है—

कवरण की काया, कवरण की माया।
येक राम बीन सब ही जाया ॥

तुकाराम की हिन्दी रचना में एक विशेषता यह भी है कि इसमें उन्होंने अपने सांप्रदायिक आराध्य देव विठोबा का कहीं उल्लेख नहीं किया। उन्होंने राम, हरि, गोविन्द के रूप में भगवान का वर्णन किया है। यह उनकी सांम्प्रदायिकतातीत भावना और अपने श्रोताओं के प्रति प्रेम का परिचायक है।

हिन्दी साहित्य में मराठी संतों की देन उल्लेखनीय है। उसमें भी संत तुकाराम का योग महत्व पूर्ण है।

उपसंहार

सभी संतों का आध्यात्मिक अंतरंग एक सरीखा होता है। फिर भी हर एक की अपनी अपनी कुछ विशेषता होती है। इस दृष्टि से देखें तो महाराष्ट्र के संतकवियों की पंक्ति में तुकाराम कुछ निराले ही दिखते हैं। ज्ञानदेव, 'ज्ञानियों के मुकुटमणि' थे। तुकाराम के शब्दों में वे—'ज्ञानियांचा राजा गुरु महाराज'—थे। साथ ही उनके चरित्रों में कहीं पार्थिवता का स्पर्श भी नहीं है। अतः वे सामान्य जनता के लिये बहुत दूर लगते हैं। उनकी वाणी आरंभ से अंत तक अत्यंत अधिकार युक्त है। यह वाणी सर्व सामान्य के काम आयेगी या नहीं—इस प्रकार का शक मन में उत्पन्न हो जाता है। उनके ज्ञान सूर्य की तरफ देखते समय दृष्टि चकाचौंध हो जाती है और मन गतिहीन होकर अपनी जगह स्थित हो जाता है।

एकनाथ गृहस्थ थे, इसलिये सामान्य व्यक्ति को वे अपने जैसे लगते हैं। लेकिन यह साधर्म्य केवल इस एक बात में ही है। उनके परमार्थरूप गार्हस्थ्य जीवन की कोई तुलना सर्व सामान्य गृहस्थ जीवन से हो ही नहीं सकती।

रामदास का तो सब कुछ ही अपूर्व है। सर्वस्व की आशा छोड़कर देह पडो का देव जोडो—देह नष्ट हो या ईश्वर मिले, इस दृढ़ निश्चय से परमार्थ के मार्ग पर चलनेवाले संत रामदास का मार्ग सामान्य गृहस्थ लोगों को नहीं सध सकता। यद्यपि वे प्रवृतिवादी थे, फिर भी उनकी प्रवृत्ति राष्ट्रव्यापी थी।

तुकाराम का सारा ढंग अलग है। ज्ञानदेव की तरह उनका चरित्र चकाचौंध कर देने वाला नहीं है। सामान्य गृहस्थ साक्षात्कारी संत कैसे बने—तुकाराम का चरित्र इसीका एक सविस्तार चित्रपट है! इसीलिये हृदय को आकर्षित करता है।

उपर्युक्त तीनों संतों की तुलना में तुकाराम बहुत ही निकट के लगते हैं। सांसरिक झंझटों से ऊबकर उनसे छुटकारा पाने की तड़प की स्थिति से लेकर साक्षात्कार के अंतिम क्षण तक तुकाराम और अन्य साधारण साधक दोनों का चरित्र बिलकुल एक सा लगता है। वही मोह, वही लोभ, वही सुख-दुख-चिंता और वही नैराश्य! यह सारा जैसे सामान्य साधक के जीवन में आता है वैसे ही उनके भी जीवन में दिखाई देता है। सांसारिक प्रपंच और परमार्थ अथवा प्रवृत्ति और निवृत्ति, इन परस्पर विरोधी वृत्तियों के बीच जो संघर्ष सामान्य साधक के मन में सदा चलता है वही इस देहूवाली संत के मन में भी चलता रहता है। सामान्य साधक की तरह उनके लिये भी 'रात्रंदिवस युद्धाचा प्रसंग—रात-दिन युद्ध के प्रसंग हैं। यह देखकर साधक के मन में उनके प्रति आत्मभाव तथा सहानुभूति का निर्माण होता है। साधकदशा में उनके बेकाबू मनकी अस्वस्थता हम देखते हैं तब उसमें आत्म प्रत्यय की अनुभूति होने से हमें सुख मिलता है। यह अनुभूति नामदेव को छोड़कर तुकाराम के सिवाय अन्यत्र नहीं मिलती।

नामदेव और तुकाराम की लोकप्रियता सर्वविदित है। इसका कारण भी यही है कि उनमें और सामान्य संसारी जनों में कोई परायापन नहीं रहता। जब हम उनकी वाणी सुनते हैं तब वे किसी दूरके व्यक्ति के शब्द हैं—ऐसा नहीं लगता, बल्कि हमारे मन की ही प्रतिध्वनि है, ऐसा लगता है। रामेश्वर भट्ट के शब्दों में—

भक्तिज्ञानें आणि वैराग्यें आगळा। ऐसा नाहीं डोळां देखियेला"

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य में उनके जैसा अग्रणी कोई अन्य नहीं देखा।

वाणी

१

तुज ऐसा कोणी न देखें उदार[१]। अभयदान शूर पाण्डुरंगा ॥१॥
शरण येती त्यांचे न विचारिसी दोष। न मागतां त्यांस अढळ देसी ॥२॥
धांवसी आडणी ऐकोनियां धांवा। कइवारें देवा भक्तांचिया ॥३॥
दोष त्यांचे जाळी कल्पकोटिवरी। नामासाठीं हरि आपुलिया ॥४॥
तुका म्हणे तुज वाणूं कैशापरी। एक मुख हरि आयुष्य थोडे ॥५॥

तुज ऐसा—तेरे जैसा, कोणी—कोई, शरण येती-जो तेरी शरण में आते हैं, न विचारसी—नहीं पूछता, अढळ-अचल पद, अविनाश पद, देसी-देता है। धांवसी-दौड़ा आता है। आडणी-संकट के समय, ऐकोनियां-सुन कर, धांवा-प्रार्थना, कैवारें-मदद के लिये, जाळी-जला देता है, कल्प-ब्रह्मदेव का एक दिन, चार युगों के सहस्र फेरे, नामासाठीं-नामस्मरण के कारण, कैशापरी-किस तरह,

हे पाण्डुरंग भगवान, भक्त जनों को अभयदान देनेवाला तेरे समान उदार व शूर हमने कोई नहीं देखा ॥१॥

जो कोई तेरी शरण में (अनन्य भाव से) आते हैं उनके दोषों को तू नहीं देखता और न मांगने पर भी तू उनको अचल पद देता है ॥२॥

संकट के समय भक्तों की पुकार सुनते ही हे देव! तू उनकी सहायता के लिये दौड़ता है ॥३॥

जो कोई तेरा नाम स्मरण करते हैं उनके अनादि काल से एकत्रित दोषों को भी तू अपने नाम के लिये (अर्थात नामस्मरण के फलस्वरूप) नष्ट कर देता है ॥४॥

तुकाराम कहते हैं—तेरा वर्णन किस प्रकार करूं? मेरा मुख एक ही है और आयु बहुत कम है ॥५॥

(८६८)

---

१ ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवइ दीन पर, रामसरिस कोउ नाहीं।
—तुलसीदास

२

तूं माउलीहून मायाळ । चंद्राहूनी शीतळ ॥
पाणियाहूनि पातळ । कल्लोळ प्रेमाचा ॥१॥

दूऊं काशाची उपमा । दुजी तुज़ पुरुषोत्तमा ॥
ओंवाळूनि नामा । तुझ्यावरूनि टाकिलों ॥२॥

तुवां केलें रे अमृता । गोड त्याही तूं परता ॥
पांचां तत्वांचा जनिता । सकळ सत्ता नायक ॥३॥

कांहीं न वालोनि आतां । उगाच चरणीं ठेवितों माथा ॥
तुका म्हणे पण्ढरिनाथा । क्षमा करीं अपराध ॥४॥

माउलीहून-माता से, मायाळ-प्रेमपूर्ण, पाणियाहून-पानी से, पातळ-पतला, कल्लोळ-लहर, काशाची-किसकी, दुजी-दूसरी, तुज-तुझे, ओवांळनि-निछावर करके, तुझयावरून-तुझपर से, टाकिलों-कर दिया, डाल दिया, तुंवा-तूने, केलें-किया, बनाया, त्याही परता-उससे भी, जनिता-पैदा करने वाला, कांहीं-कुछ भी, बोलोनि-बोलकर, उगाच-खाली, सिर्फ, ठेवितों,-रखता हूं ।

हे देव ! तू माता से अधिक प्रेम पूर्ण, पानी से अधिक पतला और चन्द्र से अधिक शीतल है । तू प्रेम की प्रचण्ड लहर है ॥१॥

हे पुरुषोत्तम ! तुझे किसकी उपमा दूं ? तेरे नाम पर मैं अपने आप को निछावर करता हूं ॥२॥

तू ने अमृत बनाया है । पर उससे भी तू अधिक मधुर है । पांच तत्वों को तूने ही पैदा किया है । तू सर्व-सत्ताधीश है ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—हे पण्ढरिनाथ ! अब मैं कुछ भी न बोलते हुए केवल तेरे चरणों पर मस्तक रखता हूं । तू मेरे सारे अपराध क्षमा कर ॥४॥

(५१७)

३

पापाची वासना नको दावूं डोळां । त्याहूनि आंधळा बराच मी ॥१॥
निंदेचें श्रवण नको माझे कानीं । बधिर करोनि ठेवीं देवा ॥२॥
अपवित्र वाणी नको माझ्या मुखा । त्याजहुनि मुका बराच मी ॥३॥
नकों मज कधीं परस्त्री संगति । जनांतून माती उठता भली ॥४॥
तुका म्हणे मज अवध्याचा कंटाळा । तूं एक गोपाळा आवडसी ॥५॥

दावूं-दिखाओ, त्याहुनि-उसकी अपेक्षा, उससे, आंधळा-अंधा, बराच-अच्छा, मी-मैं, बधिर-बहरा, करोनि-करके, ठेवीं-रखें, त्याजहूनि-उससे, मुका-गूंगा, कधीं-कभी, जनांतून-संसार से, माती-मिट्टी, (देह) उठता-उठ जाना, भली-अच्छा, अवध्याचा-सबका, कंटाळा-ऊबना, आवडसी-अच्छा लगता है ।

मेरी आंखों को पाप (रूप) की वासना न हो । इसकी अपेक्षा तो अंधापन ही मुझे अच्छा लगता है ॥१॥

मेरे कान कभी निंदा श्रवण न करें । इससे तो, भगवान, मुझे बहरा बना कर ही रखे ॥२॥

मेरे मुख से कोई अपवित्र वाणी न निकले । इसकी अपेक्षा तो गूंगापन ही अच्छा ॥३॥

मुझे परस्त्री के प्रति कभी वासना न हो । इसकी अपेक्षा तो इस मिट्टी का (शरीरका) संसार से उठ जाना ही अच्छा ॥४॥

तुकाराम कहते हैं कि इस सारे (झंझट) से मेरा जी ऊबता है । हे गोपाल, केवल तू ही मुझे अच्छा लगता है ॥५॥

(४५१५)

४

देवा आतां ऐसा करी उपकार। देहाचा विसर पाडी मज ॥१॥
तरीच हा जीव सुख पावे माझा। बरें केशिराजा कळों आलें ॥२॥
ठाव देई चित्ता राखें पायांपाशीं। सकळ वृत्तींसी अखंडित ॥३॥
आस भय चिंता लाज काम क्रोध। तोड़ावा संबंध यांचा माझा ॥४॥
मागणें तें एक हेंचि आहे आतां। नाम मुखीं संतसंग देईं ॥५॥
तुका म्हणे नको वरपंग देवा। घेईं माझी सेवा भावशुद्ध ॥६॥

करी-कर, विसर-विस्मृति, पाडी-पडने दो, मज-मुझे, तरीच-तभी, कळों आलें-ध्यान में आ चुका है, देई-देकर, राखें-रखे, तोडावा-तोड डालो, मागणें-मांगना, नको-मत, ना, वरपंग-ऊपर ऊपर की, बाहरी, भावशुद्ध-शुद्ध सेवाभाव, घेई-लो।

हे देव, मुझे अपनी देह का विस्मरण हो जाय, ऐसा उपकार तुम मुझ पर करो ॥१॥

ऐसा होगा तभी मेरी आत्मा को सुख मिलेगा। यह बात मेरी समझ में अच्छी तरह आ चुकी है ॥२॥

मेरे चित्त को अपने चरणों के पास आश्रय दो। और इसकी सारी वृत्तियों को वहीं स्थिर कर दो ॥३॥

आशा, भय, चिंता, लज्जा, काम और क्रोध इन वृत्तियों से मेरा संबंध तोड़ डालो ॥४॥

तुम से मेरी अब एक यही मांग है कि मेरे मुख से तुम्हारा नाम (अखण्ड) निकले और मुझे सत्संग प्राप्त हो ॥५॥

तुकाराम कहते हैं—हे देव, अब तुम मुझ से बहिरंग सेवा मत लो। शुद्धभाव की (अंतरंग) सेवा लो ॥६॥

(११३३)

५

सदा माझे डोळे जड़ो तुझी मूर्ति । रखुमाओीच्या पती सोयरिया ॥ १ ॥
गोड़ तुझें रूप गोड तुझें नाम । देई मज प्रेम सर्व काळ ॥ २ ॥
विठो माउलिये हाचि वर देईं । संचरोनि राहीं हृदयामाजी ॥ ३ ॥
तुका म्हणें कांहीं न मागे आणीक । तुझे पायीं सुख सर्व आहे ॥ ४ ॥

देईं-दो, वर-वरदान, राहीं-रहे, हृदयामाजी-हृदय में, सोयरिया-प्रियतम, संचरोनि-व्याप्त होकर, माउलिये-माता ।

हे प्रियतम, रखुमाई के पति (विठोबा), मेरी आंखें तेरी मूर्ति पर सदा लगी रहें ॥ १ ॥

हे देव, तेरा रूप मधुर (सुंदर) है और तेरा नाम भी मधुर है। उनके प्रति मेरे मनमें सदा प्रेम दो ॥ २ ॥

हे विठोबा, मेरी मा, यही वरदान मुझे दो, कि तुम निरंतर मेरे हृदय में व्याप्त रहो ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं-मैं और कुछ नहीं मांगता, तुम्हारे चरणों में ही मेरा सारा सुख समाया हुआ है ॥ ४ ॥

(१०७१)

६

जाणोनि नेणतें करी माझें मन । तुझी प्रेमखूण देऊनियां ॥ १ ॥
मग मी व्यवहारीं असोनि वर्तत । जेवीं जळा आंत पद्मपत्र ॥ २ ॥
ऐकोनि नाइकें निंदास्तुति कानीं । जैसा का उन्मनीं योगिराज ॥ ३ ॥
देखोनि न देखें प्रपंच हा दृष्टि । स्वप्नींचिया सृष्टि चेइल्या जेवीं ॥ ४ ॥
तुका म्हणे ऐसें जालियावांचून । करणें तो शीण वाटतसें ॥ ५ ॥

जाणोनि-ज्ञानपूर्वक । नेणतें-भानरहित, जड, देऊनियां-देकर, चेइल्या-जागृतावस्था में, जेवीं-जैसे, असोनि वर्तत-बर्ताव करूंगा, ऐकोनि नाइकें-सुनकर भी न सुनूं, जालिया-हुये, वांचून-विना, शीण-व्यर्थश्रम या बोझ, वाटतसें-मालूम होता है।

अपने प्रेम का प्रसाद देकर मेरे मन को ज्ञानपूर्वक जड बनाओ ॥ १ ॥

फिर सांसारिक व्यवहार में मैं इसी प्रकार अलिप्त रहूँगा जिस प्रकार पद्मपत्र जल में ॥ २ ॥

उन्मन अवस्था में स्थित योगिराज की भांति निंदा स्तुति सुनते हुये भी मैं कुछ न सुनूं ऐसी मेरी स्थिति होने दो ॥ ३ ॥

स्वप्न में देखी हुई सृष्टि जागृत होने के बाद जैसे मिथ्या मालूम पड़ती है उसी तरह यह विश्व प्रपंच भी मुझे मिथ्या दिखे ॥ ४ ॥

तुकाराम कहते हैं कि ऐसी स्थिति प्राप्त हुये बिना जो कुछ किया जाता है वह बोझ अर्थात थकानेवाला मालूम होता है ॥ ५ ॥

(३७६२)

७

ऐसें भाग्य कई लाहता होईन । अवघें देखें जन ब्रह्मरूप ॥ १ ॥
मग तया सुखा अंत नाहीं पार । आनदें सागर हेलावती ॥ २ ॥
शांति, क्षमा, दया मूर्तिमंत अंगीं । परावृत्त संगीं कामादिकां ॥ ३ ॥
विवेकासहित वैराग्याचें बळ । धगधगित ज्वाळ अग्नि जैसा ॥ ४ ॥
भक्ति नवविधा भाव-शुद्ध बरीं । अलंकारावरी मुगुट मणी ॥ ५ ॥
तुका म्हणे माझी पुरवी वासना । कोण नारायणा तुजविण ॥ ६ ॥

कई-कब, तया-उसको, हेलावती-लहराता है, पुरवी-पूरी करेगा, तुजविण-तेरे बिना, कोण-कौन ।

(इस अभंग में तुकाराम अपनी शुभ वासना पूरी करने के लिये भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं ।)

मैं सब को ब्रह्मरूप देखने लगूं ऐसी भाग्य-लब्धि मुझे कब होगी ? ॥ १ ॥

तब उस सुख की कोई सीमा नहीं रहेगी । मानों आनंद का सागर ही लहरा रहा हो ॥ २ ॥

शांति, क्षमा, दया साकार होकर हृदय में आ बसेंगी और संगमात्र से ही कामादि विकारों की परावृत्ति हो जायगी ॥ ३ ॥

धकधकाती अग्नि की ज्वाला के समान (तेजस्वी) विवेकयुक्त वैराग्य का बल प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

भावशुद्ध नवधा भक्ति प्राप्त होगी जो सभी अलंकारों में मुकुटमणि की भांति सर्वश्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

तुकाराम कहते हैं कि हे नारायण, आप के अतिरिक्त मेरी यह शुभ वासना कौन पूरी करेगा ? ॥ ६ ॥

(१५३६)

८

तुम्ही बैसलेती निर्गुणाचे खोळे। आम्हासी कां डोळे कान दिले ॥ १ ॥
नाइकवे तुझी अपकीर्ति देवा। अन्हेरिली सेवा न देखवे ॥ २ ॥
आपुले पोटीं तों राखियेलो वाव। आम्हासी कां भाव अल्प दिला ॥ ३ ॥
तुका म्हणे दुःखी असें हें कळों द्या। आपुलिया धंदा मन नेघे ॥ ४ ॥

खोळे-चादर, खोली, चोला, पैरों से लेकर सिर तक की थैली जैसा आच्छादन, वाव-अवकाश, अन्हेरिली सेवा-सेवा बंद करदी, मन नेघे-उत्साह नहीं आता।

(तुकाराम ईश्वर से प्रेम कलह करते हैं।)

हे देव ! आप तो निर्गुण की खोली में (छिप कर) बैठ गये हैं। फिर हमें क्यों आंख और कान दिये ? (किसलिये दिये ? हम किसको देखें और क्या सुनें ?) ॥ १ ॥

हम से आपकी निंदा नहीं सुनी जाती। आपकी सेवा नहीं हो रही है, आपकी उपेक्षा हो रही है, यह हम से देखा नहीं जाता ॥ २ ॥

यह सारा सहने के लिये आपने तो अपने पेट में काफी गुंजाइश रखी है। (अर्थात् आप तो यह सब सह सकते हैं।) फिर हमें ही क्यों 'अल्पभाव' दिया ? ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं—हे भगवान, हम दुखी हैं इतना भी तो ख्याल रखिये। अब कुछ भी करने के लिये हमारे मन में उत्साह नहीं है ॥४॥

(१२८२)

६

चित्त घेऊनियां तूं काय देसी। ऐसें मजपाशीं सांग आधीं ॥ १ ॥
तरीच पण्ढरिराया करिन साटोवाटी। नेघे जया तुटी येईल तें ॥ २ ॥
रिद्धि सिद्धि कांहीं दाविसी अभिळास। नाहीं मज आस मुक्तीचीहि ॥३॥
तुका म्हणे तुझे माझें घडे तर। भक्तीचा भाव रे देणें घेणें ॥ ४ ॥

देसी-देगा, ऐसें-सो, यह, मजपाशीं-मुझे, आधीं-पहले, तरीच-तभी, करिन-करूंगा। साटोवाटी-सौदा, नेघे-न घे-नहीं लूंगा, जया-जिसमें, तुटी-हानि, येईल-होगी, दाविसी-देगा, आस-इच्छा, तृष्णा, देणें घेणें-देन लेन।

हे देव, तू मेरा चित्त लेकर उसके बदले में मुझे क्या देगा सो मुझे पहले बता ॥ १ ॥

हे पण्ढरिनाथ, तभी मैं तेरे साथ सौदा करूंगा। जिसमें मुझे नुकसान हो ऐसा कुछ भी मैं नहीं लूंगा ॥ २ ॥

रिद्धि-सिद्धि (ऐश्वर्य और अष्ट सिद्धियां) का लालच चाहे तू दिखा, लेकिन (उनकी तो क्या) मुझे मुक्ति तक की भी इच्छा नहीं है ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं—तेरा मेरा सौदा तभी पटेगा जब मैं अपना चित्त तुझे दूं और तू अपनी भक्ति तथा शुद्ध श्रद्धाभाव मुझे दे ॥ ४ ॥

(१४६६)

१०

मन माझें चपळ न राहे निश्चळ । घड़ी एकी पळ स्थिर नाहीं ॥ १ ॥
आतां नूं उदास नव्हे नारायणा । धावें मज दीना गांजियेलें ॥ २ ॥
धांव घाली पुढें इन्द्रियाचे ओढी । केलें तड़ातोड़ी चित माझें ॥ ३ ॥
तुका म्हणे माझा नचले सायास । राहिलों हे आस धरुनी तुझी ॥ ४ ॥

चपळ-चंचल, एकी-एक, नव्हे-न रहिये, धावें-दौड़े आ, गांजियेलें-त्रस्त किया गया, धांव घाली-दौड़ता है, इन्द्रियांचे ओढी-इन्द्रियों के आकर्षण से, तड़ातोड़ी-खींचातानी, बेचैनी, नचले-नहीं चलता, सायासी-प्रयत्न, राहिलों-रहा हूँ, आस-आशा, भरोसा ।

(संत तुकाराम की ईश्वर प्राप्ति के लिये बड़ी उत्कट इच्छा है । लेकिन मन और इन्द्रियों की चंचलता उन्हें असह्य हो जाती है । इस स्थिति का वर्णन इस अभंग में है ।)

मेरा मन इतना चंचल हो गया है कि वह घड़ीभर तो क्या पल भर भी स्थिर नहीं रहता ॥ १ ॥

इसलिये हे नारायण, अब तू मेरी उपेक्षा मत कर । मेरे मन ने मुझे बहुत त्रस्त किया है । मेरे लिये दौड़ कर आ ॥ २ ॥

मेरा मन इन्द्रियों के आकर्षण (विषयाकर्षण) के वशीभूत हो कर बहुत ही बेचैन हो गया है ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं कि अब मेरा कुछ बस नहीं चलता । (प्रयत्न काम नहीं देता ।) इसलिये अब मैं तेरे ही भरोसे हूं ॥ ४ ॥

(१५६४)

११

न कळे तों काय करावा उपाय । जेणें राहे भाव तुझ्या पायीं ॥ १ ॥
येऊनियां वास करिशी हृदयीं । ऐसें घडे कई कासयानें ॥ २ ॥
साच भावें तुझें चिंतन मानसीं । राहे हें करिसी कें गा देवा ॥ ३ ॥
लटिकें हें माझें करूनियां दूरी । साच तूं अंतरीं येऊनि राहें ॥ ४ ॥
तुका म्हणे मज राखावें पतिता । आपुलिया सत्ता पाण्डुरंगा ॥ ५ ॥

न कळे-समझ में नहीं आता, काय-क्या, करावा-करूं, जेणें-जिससे, राहे-रहे, तुझ्या-तेरे, पायीं-चरणों में, येऊनियां-आकर, करिसी-करे, ऐसें-ऐसा, घडे-होगा, कईं कें-कब, कासयानें-किस तरह से, साच-सच्चा, अनन्य, भावें-भाव से, तुझें-तेरा, हें-यह, करिसी-करेगा, लटिकें-असत्य, अशुद्ध, माझें-मेरा, करूनियां-करके, दूरीं-दूर, साच-साक्षात्, मज-मुझे, पतिता-पतितको, राखावें-रक्षा करें, आपुलिया-अपनी ।

(इस अभंग में तुकाराम ईश्वर-साक्षात्कार के लिये आतुर होकर गा रहे हैं ।)

समझ में नहीं आता क्या उपाय करूं जिससे हे भगवान, तेरे चरणों में मेरा ध्यान रहे ॥ १ ॥

तू मेरे हृदय में आकर वास करे ऐसा किस तरह हो ॥ २ ॥

हे देव, मेरा मन तेरा चिंतन अनन्य-भाव से करता रहे ऐसा तू कब करेगा ॥ ३ ॥

मेरे (मन के) विकारों को दूर करके मेरे अंतस्तल में तू साक्षात आकर निवास कर ॥ ४ ॥

हे पाण्डुरंग भगवान, तू अपनी सत्ता से मुझ पतित की रक्षा कर ॥ ५ ॥

(१५३५)

१७

कासया गुण दोष पाहों आणिकांचे । मज काय त्यांचें उणें असे ॥ १ ॥
काय पापपुण्य पाहों आणिकांचें । मज काय त्यांचें उणें असे ॥ २ ॥
नष्ट दुष्टपण कवणाचें वाणूं । तयाहून अणु अधिक माझें ॥ ३ ॥
कुचर खोटा मज कोण असे आगळा । तो मी पाहों डोळां आपुलिये ॥ ४ ॥
तुका म्हणे मी या भांडवलें पुरता । तुजसी पण्ढरीनाथा लावियेलें ॥ ५ ॥

कासया-क्यों, पाहों देखूं, आणिकांचें-दूसरों के, उणें-कमी, असे-है, कवणाचें-किसका, वाणूं-वर्णन करूं, तयाहून-उससे, लावियेलें-समर्पित की है।

मैं दूसरों के गुणदोष क्यों देखूं ? क्या मुझ में उनकी न्यूनता है ? ॥ १ ॥

मैं दूसरों के पापपुण्य क्यों देखूं ? क्या मुझमें उनकी कमी है ? ॥ २ ॥

किसकी नीचता और दुष्टता का वर्णन करूं ! उससे भी अणुमात्र अधिक तो मेरे पास ही है ॥ ३ ॥

मुझ से अधिक दुराचारी और झूठा कौन है जो मैं अपनी आंखों से देखूं ? अर्थात् मुझे अपने से अधिक दुराचारी और झूठा अन्य कोई नहीं दिखता ॥ ४ ॥

तुकाराम कहते हैं—इस पूंजी में मैं परिपूर्ण हूं, हे पंढरिनाथ, (विठोबा) मैं ने वह पूंजी आपको समर्पित की है ॥ ५ ॥

(१६४६)

१३

बळें बाह्यात्कारें संपादिलें सोंग। नाही जाला त्याग अंतरींचा ॥१॥
ऐसें येतें नित्य माझ्या अनुभवा। मनासी हा ठावा समाचार ॥२॥
जागृतीचा नाहीं अनुभव स्वप्नीं। जातों विसरूनि सकळ ही ॥३॥
प्रपंचाबाहेरी नाहीं आलें चित्त। केलें करी नित्य वेवसाव ॥४॥
तुका म्हणे मज बहुरुप्याची परी। जालें सोंग वरी आंत तैसें ॥५॥

बळें-जान बूझ कर, बाह्यात्कारें-बाहरी, दिखाऊ, सोंग-स्वांग, वेश बदलना, संपादिलें-बनाया, धारण किया, ठावा-ज्ञात, जातों विसरूनि-भूल जाता हूँ, प्रपंच-गृहस्थी, वेवसाय-व्यवसाय, वरी-ऊपर से, आंत-अंदर से, तैसें-तैसा।

(इस अभंग में तुकाराम आत्म निरीक्षण कर रहे हैं।)

साधुता का बाहरी रूप मैं ने ले रखा है। लेकिन भीतर विषयों का त्याग नहीं हुआ ॥१॥

ऐसा अनुभव में नित्य कर रहा हूँ और इस वास्तविकता (समाचार) को मेरा मन भी अच्छी तरह जानता है ॥२॥

जो अनुभव जागृति में होता है, स्वप्न में वह सब मैं भूल जाता हूँ ॥३॥

मेरा दिल सचमुच (गृहस्थी) प्रपंच से दूर नहीं हुआ। पहले (गृहस्थी में) किये व्यवहार अब भी कर रहा हूँ ॥४॥

तुकाराम कहते हैं—मेरी स्थिति बहुरूपिये की जैसी हो गई है। ऊपर से तो साधुता का वेश है लेकिन फिर भी अंदर से जैसा का तैसा ही हूँ ॥५॥

(२०८४)

१४

का रे माझा तुज नये कळवळा । असोनि जवळा हृदयस्था ॥१॥
अगा नारायणा निष्ठुरा निर्गुणा । केला शोक नेणां कण्ठस्फोट ॥२॥
कां हें चित्त नाहीं पावत विश्रांती । इंद्रियांची गति खुण्टेचि ना ॥३॥
तुका म्हणे कां हो धरियेला कोप । सरलें नेणों पाप पाण्डुरंगा ॥४॥

कां-क्यों, कळवळा-करुणा, नये—नहीं आती, असोनि-होते हुए भी, जवळा-नजदीक, अगा-हे, नेणा-सुनता नहीं, कण्ठस्फोट-गला फाड़कर चिल्लाने की आवाज, खुण्टेचि न—रुकती नहीं, कां हो धरियेला कोप-क्यों गुस्सा होगये, सरलें नेणों पाप-पाप नष्ट नहीं हुआ है ?

हे देव, तू तो मेरे बहुत निकट है अर्थात् हृदय में ही है। फिर भी तुझे मेरी करुणा क्यों नहीं आती ॥१॥

हे नारायण ! तू निर्गुण और निष्ठुर है ! मैं गला फाड कर रोया। फिर भी तूने नहीं सुना ! ॥२॥

मेरा चित्त शांति क्यों नहीं पाता ? इंद्रियों की जो (विषयों के प्रति) दौड़ है वह क्यों नहीं रुकती ? ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—हे देव ! तू मुझ पर क्यों इतना क्रुद्ध होगया ? मेरे पाप नष्ट नहीं हुए इसलिये क्या ? ॥४॥

(४०५७)

१५

कोठें गुंतलासी कोणाच्या धांवया । आली देवराया निद्रा तुज ॥ १ ॥
कोठें गुंतलासी भक्ति प्रेम सुखें । न सुटती मुखें गोपिकांचीं ॥ २ ॥
काय पडिलें तुज कोणाचें संकट । दुरी पंथ वाट न चलवे ॥ ३ ॥
काय माझे तुज गुण दोष दिसती । म्हणोनि श्रीपति कोपलासी ॥ ४ ॥
काय जालें सांग माझिया कपाळां । उरला जीव डोळां तुका म्हणे ॥ ५ ॥

कोठें-कहां, गुतलासि-फँसगया, कोणाच्या-किसकी, धांवया-आर्त पुकार, आली-आ गयी, सुटती-छूटते, पडिलें-आ गया, न चलवे-नहीं चला जाता, म्हणोनि-इसलिये, कोपलासि-गुस्सा हो गया, माझिया-मेरे, कपाळा-भाग्य को, डोळां-आंखों में।

हे देव ! क्या तू किसी की पुकार सुनकर और कहीं फँसगया ? या तुझे नींद आगयी ? ॥ १ ॥

क्या तू भक्ति प्रेम के सुख में कहीं अटक गया ? या गोपियों का मुख देखने में मग्न हो गया ? अर्थात् उन से छुटकारा न पा सका ? ॥ २ ॥

क्या तू किसी का संकट दूर करने में लग गया ? या मुझे दर्शन देने के लिये आने में तुझ से इतने लंबे रास्ते चला नहीं जाता ? ॥ ३ ॥

या मेरे गुण दोष देख कर हे श्रीपति ! तू गुस्सा हो गया है? ॥ ४ ॥

मेरे भाग्य को क्या हो गया है यह बता ! तुकाराम कहते हैं—तेरी राह देखते देखते मेरा जी आंखों में आ गया है ॥ ५ ॥

(१५६६)

१६

माझिये जातीचें मज भेटो कोणी । आवडीची धणी फेडावया ॥१॥
आवडे ज्या हरि अंतरापासूनि । ऐसियांचे मनीं आर्त माझे ॥२॥
तयालागीं जीव होतो कासावीस । पाहातील वास नयन हे ॥३॥
सुफळ हा जन्म होईल तेथून । देतां आलिंगन वैष्णवांसी ॥४॥
तुका म्हणे तो चि सुदिन सोहळा । गांऊ या गोपाळा धणीवरी ॥५॥

धणी-इच्छा, आर्त-(आतुरता से) इच्छा, अंतरापासून-अंतःकरण से, कासावीस-व्याकुल, धणीवरी-जी भरकर,

हे देव ! प्रीति की मेरी कामना पूर्ण होने के लिये मेरी जाति के (मेरे जैसे) किसी भक्त से मेरी भेंट हो ॥१॥

जिन में अंतःकरण से हरिके लिये प्रीति हो ऐसे भक्तों से भेंट हो—यह मेरे मन की इच्छा है ॥२॥

उनके लिये मेरा जी व्याकुल हो रहा है। उनके दर्शन कब होंगे ? ॥३॥

उन वैष्णवों को जब मैं आलिंगन करूंगा तब मेरा जन्म सफल होगा ॥४॥

तुकाराम कहते हैं—जब उन से भेंट होगी तब वही समारोह का सुदिन होगा फिर उनके साथ जी भरकर (यथेच्छ) गोपाल का कीर्तन करेंगे ॥५॥

(२२५८)

१७

सर्वभावें आलों तुजचि शरण। कायावाचामनसहित देवा ॥१॥
आणीक दुसरें नये माझ्या मनीं। राहिली वासना तुझ्या पायीं ॥२॥
माझिये जीवीचें कांहीं जडभारी। तुजविण वारी कोण दुजे ॥३॥
तुझे आम्ही दास आमुचा तूं ऋणी। चालत दुरूनी आलें मागें ॥४॥
तुका म्हणे आतां घेतलें धरणें। हिशेवाकारणें भेटी देई ॥५॥

सर्वभावें-सब भावों सहित, आलों-आया हूं, तुजचि-तुझे ही, नये-नहीं आता, तुझ्या पायीं-तेरे चरणों में, माझ्या-मेरे, राहिली-रही है, माझिये-मेरे, जीवीचें-जीव के, जडभारी-संकट, विपत्तियां, कांहीं-जो कोई भी; वारी-दूर करे, निवारे, दुजे-दूसरा, आमुचा-हमारा, चालत दुरूनि आलें मागें-बहुत (पहले से) पीछे से यह सम्बन्ध चलता आया है, हिशेवाकारणें-हिसाब चुकता करने के लिये।

हे देव, मनसा, वाचा और कर्मणा सब भावों सहित मैं तेरी शरण आया हूं ॥१॥

तेरे सिवाय मुझे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसलिये मेरी वासना तेरे चरणों पर ही रह गयी है। अर्थात् मन में तेरी भक्ति के अतिरिक्त और कोई वासना नहीं रही ॥२॥

मेरे जो संकट हैं वे तेरे सिवाय दूसरा कौन दूर करेगा? ॥ ३ ॥

हम तेरे दास हैं। तू हमारा ऋणी (कर्जदार) है। यह तेरा हमारा सम्बन्ध बहुत पहले से चलता आया है ॥४॥

तुकाराम कहते हैं अब हम तेरे द्वार पर तकाजा लेकर (धरना देकर) बैठे हैं। इसलिये तुझे यह हिसाब चुकता करने के लिये (आ कर) दर्शन देना ही होगा ॥५॥

(८५८)

१८

न मिळो खावया न वाढो संतान । परि हा नारायण कृपा करो ॥१॥
ऐसी माझी वाचा मज उपदेशी । आणीक लोकांसी हेंचि सांगे ॥२॥
विटंबो शरीर होत कां विपत्ती । परि राहो चित्तीं नारायण ॥३॥
तुका म्हणे नाशिवंत हें सकळ । आठवीं गोपाळ तेंचि हित ॥४॥

मिळो-मिले, वाढो-बढे, परि-किंतु, लोकांसी-लोगों से, सांगे-कहता हूं, विटंबो-कष्ट होना, आठवीं-स्मरण करे ।

(तुकाराम अपनी आत्म-प्रेरणा इस अभंग में व्यक्त कर रहे हैं ।)

भले ही खाने को न मिले, संतान-सुख प्राप्त न हो, किंतु नारायण की कृपा मुझपर हो ॥१॥

ऐसा मेरी अंतरात्मा मुझे कहती है और ऐसा ही मैं लोगों से कहता हूं ॥२॥

भले ही शरीर को कुछ भी कष्ट हो, भले विपत्तियां ही क्यों न आवें, किन्तु चित्त में नारायण का ध्यान रहे ॥३॥

तुकाराम कहते हैं कि यह समस्त संसार नाशवान है । इसमें गोपाल का स्मरण ही हितकारी है ॥४॥

(२१७५)

१६

फिरविलें देऊळ जगामाजी ख्याती । नामदेवा हातीं दूध प्याला ॥१॥
भरियेली हुण्डी नरसीमेहत्याची । धनाजी जाट्याचीं सेतें पेरी ॥२॥
मिराबाई साठीं घेतो विष प्याला । दामाजी चा झाला पाडेवार ॥३॥
कबिराचे मागीं विणूं लागे शेले । मूल ऊठविलें कुंभाराचें ॥४॥
आतां तुम्ही दया करा पंढरिराया । तुका विनवी पायां वेळोवेळां ॥५॥

फिरविलें-घुमाया, देऊळ-मंदिर, जगामाजी-जगत् में, (लोगों के बीच) भरियेली-चुकाई, सेतें-खेत, पेरीं-बोता है, घेतों-लेता है, पाडेवार-चमार, मागीं-करघे पर, विणूं लागे-बुनने लगता है, शेलें-कीमती वस्त्र, मूल-बच्चा, उठविलें-उठाया, जिंदा किया, कुंभाराचें-कुम्हार का, विनवी-प्रार्थना करता है, वेळोवेळां-बार बार ।

नामदेव जब तीर्थ यात्रा को गये तब आवण्ढे मुकाम पर उनके लिये भगवान ने) मंदिर को घुमा दिया और नामदेव के हाथ से (पांडुरंग भगवान की मूर्ति ने) दूध पिया, ऐसी कीर्ति जगत् में प्रसिद्ध है ॥१॥

(नरसी मेहता ने जो ईश्वर के नाम पर लिखी) हुण्डी (द्वारका भेजी थी वह भगवान ने) चुकाई । (अपने खेत में बोने के लिये रखा हुआ अनाज धनाजी जाट ने जब संतों के भोजन के काम में ले लिया तब भगवान ने) धनाजी के खेत में अनाज बोया ॥२॥

मीरा के लिये भेजा गया विष का प्याला भगवान ने खुद ही पी डाला । और दामाजी की हुण्डी चुकाने के लिये चमार बन कर आये ॥३॥

कबीर के करघे पर भगवान वस्त्र (शेले) बुनने लगे । (और गोरा कुम्हार जब हरिनाम स्मरण में मस्त होकर नृत्य कर रहा था तो उसका बच्चा पैर के नीचे दब कर मर गया ।) उसे भगवान ने जिंदा किया ॥४॥

तुकाराम कहते हैं-हे पण्ढरिनाथ, आप मुझ पर भी अब दया कीजिये । मैं बार बार आपके चरणों में प्रार्थना करता हूँ ॥५॥

(६०८)

२०

आपुलें मरण पाहिलें म्यां डोळां । तो झाला सोहळा अनुपम्य ॥१॥
आनंदें दाटलीं तिन्ही त्रिभुवनें । सर्वात्मकपण भोग झाला ॥२॥
एकदेशीं होतों अहंकारें आथिला । त्याच्या त्यागें झाला सुकाळ हा ॥३॥
फिटलें सुतक जन्म मरणाचें । मी माझ्या संकोच दुरी झालों ॥४॥
नारायण दिला वसतीस ठाव । ठेवूनियां भाव ठेलों पायीं ॥५॥
तुका म्हणे दिलें उमटूनि जगीं । घेतलें तें अंगीं लावूनियां ॥६॥

आपुलें-अपना, पाहिलें-देखा, म्यां-मैंने, डोळां-आंखों से, सोहळा-उत्सव, समारोह, अनुपम्य-जिसकी कोई उपमा नहीं, दाटलीं-ठसाठस भर गई, आनंदें-आनंद से, सर्वात्मक पण-सब आत्मा एक ही है ऐसी स्थिति, भोग-सुख, अहंकारें आथिला-अहंकार से युक्त, सुकाळ-विपुलता, फिटलें-नष्ट हुआ, सुतक-सूतक, आशौच, संकोच-संकीर्ण भावना से, मी माझ्या-'मैं मेरे' के भाव से, दूरी झालों-दूर हो गया, दिला-दिया, ठाव-स्थान, वसतीस-रहने को, ठेवूनियां-रख कर, उमटूनि-प्रकट या प्रस्तुत कर के, अंगीं लावूनियां-अंगीकृत करके (अनुभव करके)

(तुकाराम इस प्रसिद्ध अभंग में अपनी मृत्यु का स्वयं वर्णन कर रहे हैं।)

(आत्मबोध रूपी दृष्टि से) मैंने अपनी (देहबुद्धि नाश रूपी) मृत्यु प्रत्यक्ष देखी । वह समारोह अनुपम था ॥१॥

अब यह आनन्द त्रिभुवन में नहीं समाता । क्योंकि मुझे सर्वात्मक स्थिति का सुख प्राप्त हो गया है ॥२॥

अबतक मैं अहंकार युक्त होने के कारण एक देशीय था । अब अहंकार का त्याग करने से मुझे सर्वात्मक स्थिति की विपुलता प्राप्त हुई है ॥३॥

अब मुझे जन्म मृत्यु का सूतक नहीं है । क्योंकि अहंता और ममता की संकीर्णता से मैं अब दूर हो गया हूँ ॥४॥

नारायण ने मुझे अपने पास रहने के लिये जगह दी जिस लिये मैं उनके चरणों में भक्तिभाव से रहता हूँ ॥५॥

तुकाराम कहते हैं कि मैंने इस प्रकार अनुभव किया है और उसे जगत के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है ॥६॥

(४०४६)

२१

जैथें जातों तेथें तूं माझा सांगाती । [1]चालविसी हातीं धरूनियां ॥१॥
चालों वाटे आम्हीं तुझाचि आधार । [2]चालविसी भार सवें माझा ॥२॥
बोलों जातां वरळ करिसी तें नीट । नेली लाज धीट केलों देवा ॥३॥
अवघे जन मज झाले लोकपाळ । सोइरे सकळ प्राणसखे ॥४॥
तुका म्हणे आतां खेळतों कौतुकें । झालें तुझें सुख अंतर्बाहीं ॥५॥

जेथें-जहां, तेथें-वहां, माझा-मेरा, सांगाती-साथी, चालविसी-चलाता है, हातीं-हाथ में, धरूनियां-पकड़कर, चालों-चलते हैं, वाटे-मार्ग से, आम्हीं-हम, तुझाचि-तेराहि, सवें-खुद, बोलों जातां-जो बोला जाता है, वरळ-बकना, नीट-ठीक, नेली-दूरकी, केलों-किया, बनाया, अवघे-सारे, सोइरे-सगे सम्बन्धी, आतां-अब, कौतुकें-मजे से, आनन्द से, झालें-हुआ है, तुझे-तेरा ।

(आत्मानुभूति होने के बाद आनंद में विभोर होकर तुकाराम गा रहे हैं ।)

जहां जहां मैं जाता हूँ हे भगवान, तू मेरा साथी है । तू मेरा हाथ पकड़ कर मुझे चलाता है ॥१॥

हम तेरे ही सहारे परमार्थ के पथ पर चलते हैं । तू मेरा बोझ स्वयं उठाता है ॥२॥

मुझ से अगर कुछ बकवास या अनुचित कथन भी हो जाता है तो तू उसे सुधार लेता है । इस प्रकार हे भगवान, तूने मेरी लज्जा को दूर करके मुझे निडर बना दिया है ॥३॥

सब लोग मेरे लिये परम मित्र सगे सम्बन्धी तथा प्रभुस्वरूप ही बन गये हैं ॥ ४ ॥

तुकाराम कहते हैं कि हे देव, तेरा सुख मैं अंतर और बाहर अनुभव करता हूँ । अतः आनन्द से खेलता हूँ ॥५॥

(३८०१)

१:—वाट दावी करीं धरूनियां । (८१५)

२:—(अ) 'योग-क्षेम त्यांचे जाणे जड भारी' । (८१५)

(आ) 'योग-क्षेमं वहाम्यहम्' । —गीता

(इ) 'योग-क्षेमवहो हरिः' ।

२२

आपुलियां बळें नाहीं मी बोलत । सखा कृपावंत वाचा त्याची ॥१॥
साळुंकी मंजुळ बोलतसे वाणी । शिकविता धणी वेगळाची ॥२॥
काय म्यां पामरें बोलावीं उत्तरें । परि त्या विश्वंभरें बोलविलें ॥३॥
तुका म्हणे त्याची कोण जाणे कळा । वागवी पांगुळा पायांवीण ॥४॥

आपुलियां-अपने, बळें-सामर्थ्यसे, मी-मैं, साळुंकी-कोयल, बोलतसे-बोलती है, शिकविता-सिखानेवाला, धणी-मालिक, वेगळांची-कोई और ही, अलग ही, काय-क्या, म्यां-मैंने, पामरें-तुच्छ, बोलावी-बोलूं, परी-परन्तु, त्या-उस, विश्वम्भरें-विश्व प्रति पालक ने, बोलविले-बुलवाया, कला-लीला, वागवी-चलाता है, पायांवीण-पैरोंके बिना ।

मैं जो बोलता हूँ वह अपनी सामर्थ्य से नहीं बोलता। कृपालु भगवान मेरा मित्र बना है। मैं जो बोलता हूं वह उसी की वाणी है ॥१॥

कोयल मीठी वाणी से गाती है। परन्तु उसको सिखानेवाला मालिक कोई और ही है ॥२॥

(उसी तरह) मेरे जैसा पामर क्या बोले ? परन्तु उस विश्व प्रतिपालक प्रभु ने यह बुलवाया है ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—उस ईश्वर की लीला कौन जान (लीला अगाध है) सकता है ? वह पंगु को भी चलाता है ॥४॥

(३६७७)

२३

पिकलिया सेंद कडुपण गेलें । तैसें आम्हां केलें पाण्डुरंगे ॥१॥
काम क्रोध लोभ निमालें ठायींचि । सर्व आनंदाची सृष्टि झाली ॥२॥
आठव नाठव गेलें भावाभाव । झाला स्वयमेव पाण्डुरंग ॥३॥
तुका म्हणे भाग्य या नावें म्हणीजे । संसारीं जन्मीजे याचि लागीं ॥४॥

पिकलियां-पक जाने पर, सेंद-एक तरह का फल पक जाने पर जिसकी कडुवाहट चली जाती है, कडुपण-कडुवाहट, निमाले-मिटगये, नष्ट हो गये, ठायींचि-उसी जगह पर, आठव-स्मृति, नाठव-विस्मृति, गेलें-नष्ट हो गये, म्हणीजे-कहिये, नावें-नाम से, याचि लागीं-इसी लिये, जन्मीजे-जन्मलीजिये ।

सेंद का फल जब पकजाता है तब उसकी कडुआहट चली जाती है । हमारी भी वैसी ही स्थिति पाण्डुरंग भगवान ने करदी है ॥१॥

हमारे काम, क्रोध, लोभ आदि विकार जहां के तहां खतम हो गये हैं । इस लिये हमें अब सारी सृष्टि आनन्द रूप हो गयी है ॥२॥

देह व तत्सम्बन्धी स्मृति-विस्मृति, भाव-अभाव सब नष्ट हो गये हैं । मैं स्वयं पाण्डुरंग स्वरूप हो गया हूं ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—ऐसी स्थिति को ही सद्भाग्य कहना चाहिये और इसी के लिये संसार में जन्म लेना चाहिये । (अर्थात् संसार में जन्म लेने की यही सार्थकता है) ॥४॥

(४०३८)

२४

बीज भाजुनि केली लाही। आम्हां जन्म मरणं नाहीं ॥१॥
आकाराची कैंचा ठाव। देह प्रत्यक्ष झाला देव ॥२॥
साकरेचा नोहे ऊंस। आम्हां कैंचा गर्भवास ॥३॥
तुक म्हणे अवघा जोग। [1]सर्वांघटीं पाण्डुरंग ॥४॥

भाजुनि-भूनकर, आम्हा-हमको, कैंचा-कहांका, साकरेचा-शक्कर का, नोहे-नहीं होता, ऊंस-ईख, सर्वांघटीं-सब घट में, जोग-त्याग।

(तुकाराम ब्राह्मी—स्थिति का वर्णन कर रहे हैं।)

जिस प्रकार दाना भुनकर उसकी एक बार खील बन जाने के बाद फिर उसका दाना नहीं बन सकता उसी तरह हमारा जन्म मरण अब समाप्त हो गया है ॥१॥

(हम यद्यपि साकार दीखते हैं तो भी वास्तव में) आकार के लिये स्थान ही है कहां ? क्यों कि यह देह प्रत्यक्ष ईश्वर स्वरूप बन गयी है ॥२॥

ईख की शक्कर बन जाने के बाद फिर उसकी ईख नहीं बन सकती। उसी तरह अब हमारे लिये गर्भवास कैसा ? ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—हमारे सारे भोग त्याग बन गये हैं। क्योंकि हम घट घट में केवल पाण्डुरंग को ही देखते हैं ॥४॥

(४०३७)

१ घट घट में वह साईं रमता। —कबीर

२५

विठ्ठल टाळ विठ्ठल दिण्डी। विट्ठल तोंडीं उच्चारा ॥१॥
विठ्ठल अवघ्या भाण्डवला। विठ्ठल बोला विठ्ठल ॥२॥
विठ्ठल नाद विठ्ल भेद। विठ्ठल छंद विठ्ठल ॥३॥
विठ्ठल सुखा विठ्ठल दुःखा। तुकया मुखा विठ्ठल ॥४॥

टाल-झाँझ जैसा एक वाद्य, दिण्डी-एक तंतुवाद्य, तोंडीं-मुख से, बोला-बोलिये।

हाथ में टाळ और दिण्डी लेकर मुख से विठ्ठल नाम का उच्चार करो॥ टाल और दिण्डी विठ्ठलरूप मानो ॥१॥

सारी पूंजी एक विट्ठल ही है। इसलिये मुख से विठ्ठल नाम का जप करो ॥२॥

जितने भी नाद और भेद हैं सभी विठ्ठलरूप मानो और विठ्ठल की धुन लगने दो ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—सुख में और दुःख में मैं विठ्ठल का स्मरण करता हूं इसलिये हर समय मेरे मुख पर विठ्ठल है ॥४॥

(७६६)

"हमारे कर्म, हमारे कर्म के साधन मानों सब ईश्वर के ही रूप हैं।"
"ये कर्म करते हुए चाहे सुख मिले, चाहे दुःख, वह भी विठ्ठल का रूप है।"
"भक्ति के प्रकाश में सब सुंदर मंगल ही है।"

भारतीय संस्कृतीय-साने गुरुजी।

२६

वेद अनन्त बोलिला । अर्थ इतुकाचि साधिला[1] ॥१॥
विठोबासी शरण जावें । निज निष्ठा नाम गावें ॥२॥
सकळशास्त्रांचा विचार । अंतीं इतुलाचि निर्धार ॥३॥
अठरा पुराणीं सिद्धांत । तुका म्हणे हाचि हेत ॥४॥

बोलिला-कहा, इतुकाचि व इतुलाति-इतना ही, साधिला-सध पाया, मिला ।

वेदों ने अगणित वर्णन किये हैं । लेकिन उनमें से (खोज कर के) इतना ही अर्थ प्राप्त हुआ है कि विठोबा की शरण लेकर निष्ठा पूर्वक उसका नाम लें ॥१–२॥

सारे शास्त्रों के मंथन से आखिर यही सार निकला है ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं कि अठारह पुराणों में भी यही सिद्धांत निश्चित किये हैं ॥४॥

(२१३७)

---

१ वेदाचा तो अर्थ आम्हासीच ठावा । —तुकाराम २१३८

२७

अवघ्या वाटा झाल्या क्षीण। कळी न घडे साधन[1]।
उचित विधी–विधान। न कळे न घडे सर्वथा[2] ॥१॥
भक्तिपंथ बहु सोपा। [3]पुण्य नांगवे या पापा।
[4]येणें जाणें खेपा। येणेंचि एके खण्डती ॥२॥
उभारोनि बाहे। विठो पालवीत आहे।
दासां मीचि साहे[5]। मुखें बोले आपुल्या ॥३॥
भाविक विश्वासी। पार उतरिले त्यासी।
तुका म्हणे नासी। कुतर्क्याचे कपाळीं ॥४॥

कळीं-कलियुग में, वाटा-मार्ग, सोपा-सुलभ, नांगवे-बाधा नहीं करते, खेपा-फेरे, येणेंचि-इससे ही, खण्डती-रुकते हैं, बाहे-हाथ, उभारोनि-ऊपर करके, घडे-हो, पालवीत आहे-इशारे से बुला रहा है, साहे-तारता हूं, कपाळीं-ललाट में, भाग्य में। नासी-नाश, पार उतरले-पार उतार दिया।

कलियुग में ईश्वर प्राप्ति के सब मार्ग कुण्ठित हुए हैं। इसलिये साधना कठिन हुई है। समुचित विधि विधान न समझ में आते हैं और न हो पाते हैं ॥१॥

भक्तिमार्ग ही सब से आसान है। इस मार्ग में पापपुण्य की कोई बाधा नहीं हो सकती। आवागमन का चक्र सिर्फ इसी एक मार्ग से रुकता है ॥२॥

(यह आसान है) क्योंकि विठोबा स्वयं बाहू ऊपर करके बुला रहा है और उसने अपने मुँह से प्रतिज्ञा की है—कि दासों को तारने के लिये मैं मौजूद हूं ॥३॥

जिन श्रद्धालु भक्तों ने उस पर विश्वास रखा है उन को उसने उस पार पहुँचा दिया है। तुकाराम कहते हैं–कुतर्क करने वाले के भाग्य में तो नाश ही है ॥४॥

(३५१२)

---

१ 'कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।'
२ 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता:।' —गीता, अ. ४–१६
३ 'शुभा-शुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्म-बन्धनै:।' —गीता, अ. ७–२८
४ 'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।' —गीता
५ 'तेषामहं समुद्धर्ता।' —गीता

२८

मनवाचातीत तुझें हें स्वरूप[1]। म्हणोनियां माप भक्ति केलें ॥१॥
भक्तीचिया मापें मोजितों अनंता[2]। इतरानें तत्वतां न मोजवें ॥२॥
योगयाग तपें देहाचियां योगें। ज्ञानाचिया लागें न सांपडसी[3] ॥३॥
तुका म्हणे आम्ही भोळया भावें सेवा। घ्यावी श्रीकेशवा करितों ऐसी ॥४॥

म्हणोनिया-इसलिये, मापें-माप से, मोजितों-नापता हूँ, इतरानें-अन्य के द्वारा, तत्वतां-वस्तुतः, सचमुच, न मोजवे-नापा नहीं जा सकता, योगें-द्वारा, लागें-सामर्थ्य से, सांपड़सी-प्राप्त होता है, मिलता है, भोळ्या भावे-भोले भाव से, घ्यावी-लो, स्वीकार करो, करितों ऐसी-जैसी करता हूँ वैसी, जी-जो।

हे अनंत ! तेरा यह स्वरूप, मन और वाणी इन दोनों की पहुँच से बाहर है। इसलिये (तुझे पहचानने के लिये) भक्ति ही मापदण्ड रखा है ॥१॥

उसी माप से हम तुझे मापते हैं। किसी अन्य रीति से तेरा वास्तविक माप निकालना अशक्य है ॥२॥

योग, यज्ञ, तप आदि दैहिक साधन और बौद्धिक ज्ञान से भी तू कभी प्राप्त नहीं होता ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—हम भोले भाव से जैसी तैसी तेरी सेवा कर रहे हैं। उसे तू स्वीकार कर ॥४॥

(६४३)

---

१ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

—तैत्तिरीय

२ भक्त्या मामाभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।

—गीता

३ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

—गीता

२६

जे कां रंजले गांजले । त्यांसि म्हणे जो आपुले ॥१॥
तोचि साधु ओळखावा । देव तेथेंचि जाणावा ॥२॥
मृदु सबाह्य नवनीत । तैसें सज्जनांचें चित्त ॥३॥
ज्यासि आपंगिता नाहीं । त्यासि धरी जो हृदयीं ॥४॥
दया करणें जे पुत्रासि । तेचिदासा आणि दासी ॥५॥
तुका म्हणे सांगूं किती । तोचि भगवंताची मूर्ति ॥६॥

रंजले-दुखी, गांजले-त्रस्त, त्यांसि-उनको, म्हणे-कहता है, ओळखावा-समझो, जानो, जाणावा-जानो, नवनीत-मक्खन, ज्यासि-जिसको, आपंगिता-प्रतिपालक, धरीं जो हृदयीं-जो गले लगाता है, सांगूं-कहूँ, किती-कितना, क्या ।

त्रस्त, पीडित और दुःखी लोगों को जो अपनाता है उसी को साधु जानो । वहां भगवान का ही वास है ॥१-२॥

जिस तरह मक्खन अंतर्बाह्य मृदु होता है उसी तरह सज्जनों का चित्त होता है ॥ ३ ॥

जिसका कोई प्रतिपालक नहीं उस को जो गले लगाता है, पुत्र के प्रति जितना करुणा-भाव होता है उतना ही दास और दासी के प्रति भी रखता है, तुकाराम कहते हैं, उसका क्या वर्णन करूं, वह साक्षात भगवान की मूर्ति ही है ॥४, ५, ६॥

(२२१५)

३०

मुक्तिपांग नाहीं विष्णुचिया दासां । संसार तो कैसा न देखती ॥१॥
वैसला गोविंद जडोनियां चित्तीं । आदि तेचि अंतीं अवसानीं ॥२॥
भोग नारायणा देऊनि निराळीं । ओविया मंगळी तोचि गाती ॥३॥
वळ वुद्धि त्यांची उपकारासाठीं । अमृत तें पोटीं सांठविलें ॥४॥
दयावंत तरी देवाच सारखीं । आली पारखीं नोळखती ॥५॥
तुका म्हणे त्यांचा जीव तोचि देव । वैकुण्ठ तो ठाव वसती ते ॥६॥

पांग-दरिद्रता, वंधन, विष्णुचिया-विष्णुके, संसार-गृहस्थी, वैसला-बैठा है, जडोनियां-स्थिर होकर, अवसानीं-विराम में, देउनी-देकर, ओवियां-मंगलगीत, निराळीं-निराकार स्वरूप पर, त्यांची-उनकी, उपकारासाठीं-उपकार के लिये, सांठविलें-भर रखना, सारखीं-जैसे, पारखीं-पराया, नोळखतीं-जानते नहीं, ठाव-स्थान, वसती ते-जहां वे रहते हैं।

(इस अभंग में तुकाराम ने भक्तों के लक्षण वताते हुए उनका अभिनन्दन किया है।)

विष्णु के दास को मुक्ति का दारिद्रय नहीं रहता। (अर्थात् वे मुक्ति की तृष्णा नहीं रखते।) संसार की तरफ वे देखते तक नहीं। (अर्थात् वे उससे अलिप्त रहते हैं।) ॥१॥

गोविन्द उनके अंतःकरण में सदा के लिये विराजमान हो गया है, (अतः) आदि से लेकर अन्त तक (उनके मुख से अखण्ड नामोच्चार चलता है)। ॥२॥

इन्द्रिय-जन्य सुखभोगों को वे ईश्वरार्पित कर देते हैं। उसी (निराकार स्वरूप) ईश्वर के मंगलगीत गाते हैं ॥३॥

उनकी सारी शक्ति और वुद्धि परोपकार के लिये ही होती है। उनका हृदय अमृत से भरा रहता है ॥४॥

दयावान तो वे भगवान के जैसे ही होते हैं। अपना-पराया वे जानते नहीं ॥५॥

तुकाराम कहते हैं कि उनका जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जहां वे निवास करते हैं वह वैकुण्ठ (भगवान का धाम) ही है ॥६॥

(२२६२)

३१

चंदनाचे हात पायही चंदन । परिसा नाहीं हीन कोणी अंग ॥१॥
दीपा नाहीं पाठीं पोटीं अंधकार । सर्वांगीं साकार अवघी गोड ॥२॥
तुका म्हणे तैसा सज्जनापासून । पाहता अवगुण मिळेचिना ॥३॥

परिसा-पारसको, कोणी-किसी भी, साकर-शक्कर, तैसा-उसी तरह, सज्जनापासून-सज्जनों से, पाहता-देखें तो, देखने पर, मिळेचिना-मिलता नहीं ।

(इस अभंग में तुकाराम ने संतों की महिमा का वर्णन किया है ।)

चंदन वृक्ष के सभी अवयव चंदन होते हैं (अर्थात् सुगंधदायी होते हैं ।) पारस का कोई भी अंग हीन नहीं है । (वह सर्वांग-श्रेष्ठ ही होता है) ॥१॥

दीपक के आगे पीछे कहीं भी अंधेरा नहीं रहता । (अर्थात दीपक सभी तरफ से प्रकाशवान होता है ।) शक्कर सारी की सारी (सर्वांग) मधुर होती है ॥२॥

तुकाराम कहते हैं—इसी प्रकार सज्जन भी होते हैं । उनमें कहीं भी अवगुण नहीं दिखायी देता है ॥३॥

(२३४०)

३२

भक्तीचें तें वर्म जयाचिये हातीं । तया घरीं शांति क्षमा दया ॥१॥
अष्ट महा सिद्धि वोळगती द्वारीं । नवजती दूरी दवडितां ॥२॥
तेथें दुष्टगुण न मिळे निःशेष । चैतन्याचा वास झाला माजी ॥३॥
संतुष्ट हें चित्त सदा सर्वकाळ । तुटली हळहळ त्रिगुणाची ॥४॥
तुका म्हणे त्याचा देव सर्व भार । चालवी कामार होयूनियां ॥५॥

वर्म-मर्म, जयाचिये-जिसके, तया-उसके, घरीं-घरमें, वोळगती- सेवा करती हैं, नवजती-जाती नहीं, दूरी-दूर, दवडितां-हटाने से, झाला-हुआ है, माजी-अन्तर में, तुटली-नष्ट हुई है, हळहळ-बेचैनी, क्षोभ, चलवी-चलाता है, कामार-सेवक, होऊनियां-बनकर ।

(इस अभंग में भक्तलोगों के वैभव का तुकाराम वर्णन करते हैं ।)

भक्ति का मर्म जिन लोगों के हाथ लग गया है शांति, क्षमा और दया सदा उनके साथ रहती हैं ॥१॥

अष्ट महा सिद्धियां उनके द्वार पर सेवा के लिये तत्पर रहती हैं । हटाने से भी वे दूर नहीं होतीं ॥२॥

उनके पास अवगुण का नाम निशान भी नहीं रहता । उनके हृदय में चैतन्य (ईश्वर) निवास करता है ॥३॥

उनका चित्त सदा संतुष्ट रहता है । त्रिगुणों के कारण उत्पन्न क्षोभ दूर हो जाता है ॥४॥

तुकाराम कहते हैं कि भगवान सेवक बनकर उनका सारा भार उठाता है ॥५॥

(३८२८)

३३

भक्त ऐसे जाणा जे देहीं उदास । गेलें आशापाश निवारुनी ॥१॥
विषय तो त्यांचा जाला नारायण । नावड़े जन धन माता पिता ॥२॥
निर्वाणीं गोविंद असें मागें पुढें । कांहींच सांकड़े पडों नेदी ॥३॥
तुका म्हणे सत्य कर्मा व्हावें साह्य । घातलिया भय नर्का जाणें ॥४॥

निवारूनी-दूर करके, नष्ट करके, जाला-हुआ है, नावडे-अच्छे नहीं लगते, निर्वाणीं-निर्वाण के समय, कांहींच-कोई भी, सांकडें-संकट, पडों नेदी-आने नहीं देता, घातलिया भय-डर दिखलायेंगे तो, नर्का जाणें-नरक में जाना पड़ेगा।

जिनका आशापाश टूट गया है और जो देह के प्रति उदास (अनासक्त) हो गये हैं उन को भक्त समझो ॥१॥

नारायण ही उनका एकमेव विषय बन चुका है। धन जन माता पिता आदि उन्हें अच्छे नहीं लगते ॥२॥

(ऐसे भक्तों के) निर्वाण के समय गोविंद (ईश्वर) सब ओर (आगे पीछे) रहता है। उनपर कोई भी संकट नहीं आने देता ॥३॥

तुकाराम कहते हैं–सत्कर्म में मदद करनी चाहिये। इसमें जो (बाधा डालेंगे) भय दिखलायेंगे वे नरक में जायेंगे ॥४॥

(२२५०)

३४

कृपालु सज्जन तुम्ही संतजन । हें चि कृपा दान तमचें मज ॥१॥
आठवण तुम्हीं द्यावी पाण्डुरंगा । कींव माफी सांगा काकुळती ॥२॥
अनाथ अपराधी पतित आगळा । परि पायावेगळा नका करूं ॥३॥
तुका म्हणे तुम्ही निरविल्यावरी । मग मज हरि उपेक्षीना ॥४॥

तुमचें–तुम्हारा, आठवण–स्मरण, द्यावी–दीजिये, कींव–दयनीय दशा, सांगा–कहिये, काकुळती–व्यकुलता से, आगळा–अग्रणी, वेगळा–अलग, नका–मत, करूं–कीजिये, निरवल्यावरी सिपुर्द करने पर, मग–फिर ।

(तुकाराम का मन संतों के प्रति आदरभाव से भरा हुआ है । वे इस अभंग में भगवान के पास अपनी सिफारिश करने के लिये संतों से निवेदन करते हैं ।

हे संतजन, आप बहुत कृपालु तथा सज्जन हैं । आपकी यह कृपा मेरे लिये वरदान है ॥१॥

आप भगवान को मेरी याद दिलाइये और मेरी दयनीय दशा व्याकुल शब्दों में उनको बताइये ॥२॥

मैं अनाथ, अपराधी और पतितों में अग्रणी हूँ । फिर भी मुझे आप अपने चरणों से दूर मत कीजिये । ॥३॥

तुकाराम कहते हैं कि भगवान के हाथों में आप मुझे सुपुर्द करेंगे तो भगवान मेरी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे ॥४॥

(२२०७)

३५

चित्त शुद्ध तरी शत्रु मित्र होती । व्याघ्र ही न खाती सर्प तया[1] ॥१॥
विष तें अमृत आघात तें हित । अकर्तव्य नीत होय त्यासी ॥२॥
दुःख तें देईल सर्व सुख फळ । होतील शीतळ अग्नि ज्वाळा ॥३॥
आवडेल जीवां जीवाचिये परी । सकळां अंतरी एक भाव[2] ॥४॥
तुका म्हणे कृपा केली नारायणें । जाणिजेते येणें अनुभवें ॥५॥

तरी-तो, नीत-शुभकारी, होय-हो जाता है, त्यासी-उसको, होतील–बन जायेंगी। जिवाचिये परी-खुदकी तरह, जीवां-अन्य जीवों को, जाणिजेते-जानिये, येणें अनुभवें-ऐसा अनुभव आने पर।

अगर चित्त शुद्ध है तो शत्रु भी मित्र बन जाता है। शेर, सर्प आदि भी उसे कुछ हानि नहीं पहुँचाते ॥१॥

विष भी अमृत बन जाता है। प्रहार हितकारी हो जाता है। अकर्तव्य मंगलकारी बन जाता है ॥२॥

दुखप्रद घटनाओं से भी सुख मिलता है और अग्नि की ज्वालायें भी शीतल हो जाती हैं ॥३॥

अपने प्राणों की तरह अन्य सब लोगों से भी प्रेम करने लगता है। सब के प्रति एक ही यानी समभाव होता है ॥४॥

तुकाराम कहते हैं—जिसको इस प्रकार का अनुभव होता है उस पर नारायण ने कृपा की है ऐसा समझिये ॥५॥

(६१९)

---

१ अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत् संन्निधौ वैर त्यागः । —योगसूत्र
२ आत्मोपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन । —गीता

३६

काय वाणूं न आतां पुरे हे वाणी । मस्तक चरणीं ठेवितसे ॥१॥
थोरीव सांडिली आपुली परिसें । नेणें सिवों कैसे चरणीं लोखंडासी ॥२॥
जगाच्या कल्याणा संतांच्या विभूति । देह कष्टविती परउपकारें ॥३॥
भूतांचीं दया हें भांडवल संतां । आपुली ममता नाहीं देहीं ॥४॥
तुका म्हणे सुख पराविया सुखें । अमृत हें मुखें स्रवतसे ॥५॥

वाणूं-वर्णन करूं, आतां-अब, पुरे-पर्याप्त, हें-यह, ठेवितसे-रखता हूँ, थोरीव-श्रेष्ठता, सांडिली-छोड़कर, परिसें-पारस ने, सिवों-छुवूं, लोखंडासी-लोहे को, नेणें-नहीं (मानता) भांडवल-पूंजी, कष्टविती-घिस देते हैं, पराविया-दूसरे लोगों के ।

(संतों की महिमा का) मैं कैसे बखान करूं । मेरी यह वाणी अपर्याप्त है । मैं तो उनके चरणों में (अत्यंत नम्रता से) सिर झुकाता हूँ ॥१॥

पारस अपनी श्रेष्ठता भूल जाता है । लोहे को कैसे स्पर्श करूं— यह वह नहीं सोचता । (पारस को न तो अपनी महत्ता का न लोहे की हीनता का भान होता है । संतों का स्वभाव भी ऐसा ही होता है) ॥२॥

संतों के अवतार जगत के कल्याण के लिये ही होते हैं । परोपकार के लिये ही वे अपने (जीवन को खपा देते हैं) देह को घिस देते हैं ॥३॥

भूतदया ही संतों की पूंजी है । संतों को अपनी देह की आसक्ति नहीं होती ॥४॥

तुकाराम कहते हैं कि दूसरों के सुख में ही संतों का सुख समाया रहता है । उनके मुख से (हरिनाम) का अमृत बहता है ॥५॥

(२२००)

३७

करावा संकोच चित्ताचि भोवता। होय तें वहुतां सुख कीजें ॥१॥
देवाचि पुजा हे भूतांचे पाळण। मत्सर तो शीण वहुतांचा ॥२॥
रुसावें फुगावें आपुलिया वरी। उरला तो हरी सकळही ॥३॥
तुका म्हणे संतपण याचि नांव। [1] जरी होय जीव सकळांचा ॥४॥

करावा-करें, भोवता-बाबत में, पाळण-प्रतिपालन, रक्षा, रुसावें, फुगावें-गुस्सा होना।

जो कुछ संकोच (अनुदारता, कोर कसर) करना हो वह अपने (चित्तके) प्रति करें। जो कुछ करें वह अधिक लोगों के सुख की दृष्टि से करें ॥१॥

भूतमात्र का प्रतिपालन (प्राणिमात्र के प्रति दया) यही ईश्वर की पूजा है। लोगों का मत्सर करने में दुख है ॥२॥

अगर गुस्सा करना हो तो अपने पर करें, क्योंकि अन्य सारे हरिस्वरूप हैं ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—सबका जीव बनना (भूत मात्र में अपने को देखना) यही साधुता है ॥४॥

(२३०६)

---

१ आवडेल जीवां जिवाचिये परी। —तुकाराम—६१६

३८

पुण्य पर उपकार पाप ते परपीड़ा । आणिक नाहीं जोड़ा दुजा यासी[1] ॥१॥
सत्य तोचि धर्म असत्य तें कर्म । आणिक हें वर्म नाहीं दुजें ॥२॥
गति तेचि मुखीं नामाचें स्मरण । अधोगति जाण विन्मुखता ॥३॥
संतांचा संग तोचि स्वर्गवास । नर्क तो उदास अनर्गळा ॥४॥
तुका म्हणे उघड़ आहे हित घात । जयाचें उचित करा तैसें ॥५॥

आणिक-और, दूसरा, जोड़ा-उपमा, समान, दूजा-दूसरा, यासी-इसको, वर्म-मर्म, (सार) तोचि-वही, जाण-समझ, अनर्गळ-स्वच्छंद, स्वेच्छाचारी, उघड़े-स्पष्ट, आहे-है, जयाचें-जिसको, करा-करें, तैसें-वैसा ।

परोपकार करना, यही पुण्य है, और पर-पीड़न यही पाप है। इनकी तुलना में और कोई पुण्य-पाप नहीं है ॥१॥

सत्य (वचन तथा कर्म) यही धर्म है । असत्य कर्म (पाप) है । इसके सिवाय और कुछ सार नहीं है ॥२॥

हरिका स्मरण ही सद्‌गति है और उससे विमुख होना ही अधोगति है ॥३॥

संत-सहवास यही स्वर्ग-सुख है और उनके प्रति उदासीन (अनर्गळ) रहना यही नरकवत् है ॥४॥

तुकाराम कहते हैं-हित और अहित दोनों हमारे सामने स्पष्ट हैं । जिसको जैसा उचित लगे वैसा वह करे ॥५॥

(२७७४)

---

१ अष्टादश पुराणानां सारं सारं समुद्‌धृतम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय पर पडीनम् ॥

३६

कें वाहावें जीवन । कें पलंगी शयन ॥१॥
जैसी जैसी वेळ पड़े । तैसें तैसें होणें घड़े ॥२॥
कें भोज्य नानापरी । कें कोरड्या भाकरी ॥३॥
कें बैसावें वाहनीं । कें पायीं अनवाणी ॥४॥
कें उत्तम प्रावर्णें । कें वसनें तीं जीर्णें ॥५॥
कें सकळ संपत्ति । कें भोगणें विपत्ती ॥६॥
कें सज्जनाशीं संग । कें दुर्जनाशीं योग ॥७॥
तुका म्हणे जाण । सुख दुःख तें समान ॥८॥

कें-कभी, वाहावें-भरना, जीवन-पानी, वेळपड़े-समय आवे, होणें घडे-बनना पड़ता है, कोरड्या-सूखी, भाकरी-ज्वारी की रोटियां, अनवाणी-नंगे पैर, प्रावर्णें-उत्तमवस्त्र।

कभी पानी भरना होता है तो कभी आराम के लिये पलंग भी मिल जाता है ॥१॥

जैसा समय आता है उसके अनुसार बनना पड़ता है ॥२॥

कभी भोजन के लिये तरह तरह के पकवान रहते हैं तो कभी सूखी रोटियां ॥३॥

कभी सवारी को वाहन मिलता है तो कभी नंगे पैर चलना पड़ता है ॥४॥

कभी पहनने के लिये उत्तम वस्त्र मिलते हैं तो कभी फटे कपड़े ॥५॥

कभी सब तरह की संपत्ति से संपन्न होते हैं तो कभी विपत्ति में रहने की नौबत आती है ॥६॥

कभी सज्जनों का संग तो कभी दुर्जनों से संबंध ॥७॥

तुकाराम कहते हैं—सुख और दुःख समान मानना चाहिये ॥८॥

(२७१७)

४०

हेंचि थोर भक्ति आवडती देवा । संकल्पावी माया संसाराची ॥१॥
ठेविलें अनंतें तैसेचि रहावें[1] । चित्तीं असों द्यावें समाधान ॥२॥
वाहिल्या उद्वेग दुःखचि केवळ । भोगणें ते फळ संचिताचें ॥३॥
तुका म्हणे घालूं तयावरी भार । वाहूं हा संसार देवापायीं ॥४॥

थोर–श्रेष्ठ, आवडती–अच्छी लगती है, ठेविलें–रखा है, अनंतें–अनंत ने, रहावे–रहना चाहिये, असोद्यावें–रहने दिया जावे, वाहिल्या उद्वेग–चिंता करना, दुःखचि–दुःखही, भोगणें–भुगतना, संचिताचें–प्रारब्ध का, घालूं–डालें, तयावरी–उसपर, वाहूं–समर्पित करें, संसार–घर, परिवार आदि, गृहस्थी ।

संसारिक संबंध ईश्वर को समर्पित करके जो भक्ति की जाती है वह भक्ति ईश्वर को अधिक अच्छी लगती है ॥१॥

(प्रारब्ध कर्म के अनुसार) ईश्वर जिस स्थिति में रखे उसी स्थिति में वह संतुष्ट अर्थात् प्रसन्नचित्त रहे ॥२॥

उद्वेग से (सुख प्राप्त नहीं होता, बल्कि) केवल दुःख होता है । क्योंकि प्राणिमात्र को संचित कर्म का फल तो भुगतना ही पड़ता है ॥३॥

तुकाराम कहते हैं कि हम अपना (योगक्षेम का) भार उस (ईश्वर) पर ही डाल दें और संसारिक संबंध उसके चरणों में समर्पित कर दें ॥४॥

(३३३५)

१ 'जेहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये' —तुलसीदास

४१

सत्य संकल्पाचा दाता नारायण। सर्व करी पूर्ण मनोरथ ॥१॥
येथें अळंकार शोभती सकळ[1]। भावबळें फळ इच्छेचें तें ॥२॥
अंतरीचें बीज जाणे कळवळा। व्यापक सकळां ब्रह्माण्डाचा ॥३॥
तुका म्हणे नाहीं चालत तांतडी। प्राप्त काल घड़ी आल्याविण ॥४॥

कळवळा–करुणा, नाहीं चालत–नहीं चलती, तांतड़ी–उतावलापन, जल्दबाज़ी, आल्या विण–आये बिना।

(जो कोई) सत्य संकल्प करते हैं उन के सारे मनोरथ पूरे करनेवाला दाता नारायण है ॥१॥

ईश्वर को सारे (स्तुति रूप) अलंकार शोभा देते हैं। (सब प्रकार की स्तुतियां शोभा देती हैं। अतः मेरी यह स्तुति भी शोभा देगी)। भाव बल से (उत्कटता से) इच्छित फल प्राप्त होता है ॥२॥

ईश्वर सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक होने के कारण हमारे अन्तःकरण में जो करुणा है उसका बीज (वास्तविकता) वह जानता है ॥३॥

तुकाराम कहते हैं–इच्छित फल प्राप्त होने का समय आने से पहले उतावलापन व्यर्थ है ॥४॥

(२७३८)

---

१ तुका म्हणे जें जें बोला। तें तें साजे या विठ्ठला ३३०४

४२

चालें हें शरीर कोणाचिये सत्ते । कोण बोलवितें हरीविण ॥१॥
देखवी ऐकवी एक नारायण । तयाचें भजन चुकों नको ॥२॥
मानसाची देव चालवी अहंता । मीचि एक कर्ता म्हणो नये ॥३॥
वृक्षाचेंही पान हाले त्याची सत्ता । राहिली अहंता मग कोठों ॥४॥
तुका म्हणे विठो भरला सबाह्य । उणें काय आहे चराचरीं ॥५॥

चालें-चलता है, कोणाचिये-किसकी, सत्ते-सत्तासे, बोलवितें-बुलवाता है, हरीविण-हरिके विना, देखवी-दिखाने वाला, ऐकवी-सुनानेवाला, तयाचे-उसका, चुकों नका-भूलना नहीं, मीचि-मैंही, म्हणो नये-मत कहिये, हालें-हिलता है, भरला-व्याप्त, उणें-उसके विना ।

यह शरीर किसकी सत्ता से चलता है ? हरिके विना उससे कौन बुलावता है ? ॥१॥

(नेत्रेन्द्रियों से) दिखानेवाला, और (कर्णेन्द्रियों से) सुनाने वाला एक नारायण ही है । उसका भजन करना कभी मत भूलो ॥२॥

(किसी कर्म का कर्ता एक मैं ही हूँ ऐसा मनुष्य जो अहंकार वश कहता है) मन की यह अहंकार भावना का प्रेरक भी वह देव ही है । अतः किसी कर्म का कर्ता एकमात्र मैं हूं ऐसा न कहे ॥३॥

वृक्ष का एक एक पत्ता उसी की सत्ता से हिलता है । फिर अहंकार के लिये अवसर है ही कहां ? ॥४॥

तुकाराम कहते हैं—विठोबा (भगवान) अंतर्बाह्य व्याप्त है । उससे रहित इस चराचर जगत् में क्या है ? ॥५॥

(३३३६)

४३

कां रे नाठविसी कृपाळु देवासी । पोसितो जनासी एकला तो ॥१॥
बाळा दुधा कोण करितें उत्पत्ती । वाढवी श्रीपति सर्व दोन्ही ॥२॥
फुटती तरुवर उष्णकाळमासीं । जीवन तयांसी कोण घाली ॥३॥
तेणें तुझी काय नाहीं केली चिंता । राहे त्या अनन्ता आठवूनि ॥४॥
तुका म्हणे ज्याचें नाम विश्वम्भर । त्याचें निरंतर ध्यान करीं ॥५॥

नाठविसी-स्मरण नहीं करता, पोसितों-पोपण करता है, एकला-अकेला, करितें-करता है, वाढवी-बढ़ाता है, प्रतिपालन करता है, फुटती-उगते हैं, तरुवर-पेड़पौधे, उष्णकाल-ग्रीष्मऋतु, मासीं-महीने में, तयांसी-उनको, घाली-डालता है, देता है, तेणें-उसने, काय-क्या, केली-की, आठवूनि-स्मरण करके ।

अरे, तू कृपालु भगवान का स्मरण क्यों नहीं करता ? सब लोगों का पालन-पोषण वह अकेला ही करता है ॥१॥

बालक को कौन उत्पन्न करता है और माता के स्तनों में उसके लिये दूध कौन पैदा करता है ? (स्तनों में) दूध का और (गर्भ में) बालक का एक साथ ही दोनों का वह श्रीपति भगवान पोषण करता है ॥२॥

ग्रीष्मकाल में जो पेड़पौधे उत्पन्न और पल्लवित होते हैं उनको पानी कौन देता है ? ॥३॥

उसने (ईश्वर ने) क्या तेरी चिंता नहीं की ? उस अनन्त (भगवान) का स्मरण करके (निश्चिंत) रह ॥४॥

तुकाराम कहते हैं—जिसका नाम विश्वंभर है उस (भगवान) का निरंतर ध्यान (चिन्तन) कर ॥५॥

(२६७५)

४४

[1]पराविया नारी माउली समान । मानिलिया धन काय वेचे ॥१॥
न करितां परनिन्दा परद्रव्य अभिलास । काय यास वेचे तुमचे सांगा ॥२॥
बैसलिये ठायीं म्हणतां राम राम । काय होय श्रम ऐसें सांगा ॥३॥
संतांचें वचनीं मानितां विश्वास[2] । काय तुमचें यांस वेचे सांगा ॥४॥
खरें बोलतां कोण लागती सायास । काय वेचे यास ऐसे सांगा ॥५॥
तुका म्हणे देव जोडे याचसाठीं । आणिक ते आटी न लगे कांहीं ॥६॥

पराविया-दुसरे की, परायी, माउली-मा, मानिलिया-मानने से, काय-क्या, वेचें-खर्च होता है, करितां-करते, यास-इसके लिये, सांगा-कहो, बैसलिये-बैठे हुए हैं, ठाईं-जगह पर, म्हणतां-बोलते, मानितां-मानने से, खरें-सत्य, लागती-लगते हैं, कोण-क्या, सायास-परिश्रम, प्रयत्न, जोडे-प्राप्त करना, याजसाठीं-उसके लिये, आटी-प्रयत्न, नलगे-नहीं लगता ।

परस्त्री को माँ के समान मानने में तुम्हारा क्या धन खर्च होता है ॥१॥

दूसरों की निंदा न करो और दूसरों के धन की अभिलाषा न करो, तो उसमें तुम्हारा क्या खर्च होता है सो कहो ॥२॥

बैठे बैठे राम कहने से तुमको क्या श्रम पड़ता है सो कहो ॥ ३ ॥

संतों के वचनों पर विश्वास रखने में तुम्हारा क्या खर्च होता है सो बताओ ॥४॥

सत्य बोलने में क्या कष्ट होता है और इसमें क्या खर्च होता है सो बताओ ॥५॥

तुकाराम कहते हैं—भगवत्प्राप्ति के लिये कोई प्रयत्न नहीं करना होता ॥६॥

(२६६१)

---

१ मातृवत्परदारेषु—

२ मारग में तारन मिले संत राम दोई ।
संत सदा सीस उपर हृदय होई ॥ मीरा बाई ॥

४५

आलियां भोगासी असावें सादर। देवावरी भार घालूनिया ॥१॥
मग तो कृपा सिंधु निवारीं सांकड़ें। येर तें बापुड़ें काय रंक ॥२॥
भयाचिये पोटीं दुःखाचिया रासी। शरण देवासी जातां भले ॥३॥
तुका म्हणे नव्हे काय त्या करितां। चिंतावा तो आतां विश्वंभर ॥४॥

आलियां-आये हुए, भोगासी-भोगों से, असावें-रहें, सादर-तैयार घालूनिया-डालकर, येर-दूसरे, बापुडे-बेचारे, नव्हे काय-क्या न हो, त्या करितां-उसके करने से, चिंतावा-चिन्तन करें।

जो कुछ प्रारब्ध के अनुसार भोगना पड़े या भोग प्राप्त हो उसका सारा बोझ ईश्वर पर डाल कर भोगने के लिये तत्पर रहें ॥१॥

फिर अपने पर जो कोई संकट आवेगा उसको कृपासागर भगवान दूर करेगा। उसके सिवा और तो सब (स्वयं ही) असहाय और दीन हैं। वे क्या कर (काय ?) सकते हैं ? ॥२॥

भय से ही दुख राशि उत्पन्न होती है। इसलिये उस देव की शरण जाना ही उचित है ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—वह विश्व प्रतिपालक भगवान करना चाहे तो क्या नहीं हो सकता ? इसलिये हम उसका ही चिन्तन करें ॥४॥

(३६३६)

४६

भोग तो न घडे संचितावांचूनि । करावें तें मनीं समाधान ॥१॥
म्हणऊनि मनीं मानूं नये खेदू । म्हणावा गोविन्दू वेळोवेळां ॥२॥
आणिकां रुसावें न लगे वहुतां । आपुल्या संचितावांचूनियां ॥३॥
तुका म्हणे भार घातलियावरी । होईल कैवारी नारायण ॥४॥

संचितावांचूनि-प्रारब्ध के सिवाय, खेदू-खेद, कैवारी-सहायक, होईल-होगा, घातलियावारी-डाल देने पर, मानूं नये-नमानें, म्हणावा-उच्चारण करें ।

सुख दुखादि भोग प्रारब्ध के विना प्राप्त नहीं होते । इस विचार से मन का समाधान करना चाहिये ॥१॥

हर समय गोविन्द का स्मरण करना चाहिये । मन में खेद नहीं करना चाहिये ॥२॥

अपने संचित (प्रारब्ध) कर्म के सिवाय और किसी पर क्रोध नहीं करना चाहिये ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—हम सारा बोझ जब नारायण पर डाल देंगे तो वह हमारा सहायक होगा ॥४॥

(३४४६)

४७

निर्वैर व्हावें सर्वभूतांसवें । साधन वरवें हें चि एक[1] ॥१॥
तरीच अंगीकार करील नारायण । वडबडतो शीण येणेंविण ॥२॥
सोईरे पिशुन समानचि वडे । चित्त पर ओढे उपकारी ॥३॥
तुकाम्हणे चित्त झालिया निर्मळ । तरिच सकळ केलें होय ॥४॥

व्हावे-बनें, वरवें-उत्तम, करिल-करेगा, शीण-कष्टप्रद, येणेंविण–इसके अतिरिक्त, पिशुन-शत्रु, कपटी, ओढें-आकृष्ट ।

भूतमात्र के प्रति हम निर्वैर बनें यही एक मात्र उत्तम साधना है ॥१॥

ऐसा होने पर ही नारायण हमें अंगीकार करेगा । इसके अतिरिक्त अन्य सब केवल कष्टप्रद बकवास है ॥२॥

चित्त दूसरे लोगों के (सेवा) उपकार के लिये आकृष्ट हो और शत्रु मित्र समान बन जायं ॥३॥

तुकाराम कहते हैं—जब चित्त निर्मल बन जायेगा तभी यह सब हो सकेगा ॥४॥

(३६३७)

---

१ (१) निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव–गीता, ११–५५
(२) निर्वैर होणें साधनाचें मूळ–तुकाराम, (२७५६)

४८

सर्वस्वाचा त्याग तो सदा सोंवळा । न लिंपे विटाळा अग्निजैसा ॥१॥
सत्यवादी करी संसार सकळ । अलिप्त कमळ जळीं जैसा ॥२॥
वडे ज्या उपकार भूतांची ते दया । आत्मस्थिति तया अंगीं वसे ॥३॥
न बोले गुणदोष नाइके जो कानीं । वर्तोनी तो जनीं जनार्दन ॥४॥
तुका म्हणे वर्म जाणितल्याविण । पावे करितां शीण सांडीमांडी ॥५॥

सोंवळा-पूजादि के लिये जो शुचिर्भूत बनता है वह, पवित्र, लिंपे-लिप्त होता है, विटाळा-अपवित्रता, सोंवळा के विरुद्धार्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है, सांडीमांडी-यह त्यागना वह प्राप्त करना।

जिसने सर्वस्व का (अहंता का) त्याग किया वह सदा के लिये शुचिर्भूत (पवित्र) बना है। अग्नि की तरह ही उसको फिर अपवित्रता स्पर्श तक नहीं करती ॥१॥

फिर उसके सारे व्यवहार सत्य के अनुरूप होते हैं। उसमें भी वह पानी में कमल की तरह अलिप्त रहता है ॥२॥

भूत दया से प्रेरित होने पर जिसका सारा जीवन सेवामय बन गया है उसी को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है ॥३॥

जो गुणदोष की चर्चा से अलिप्त है वह समाज में रहते हुए भी (जनीं) ईश्वररूप ही (जनार्दन) है ॥४॥

तुकाराम कहते हैं (त्याग का) वह मर्म जाने बिना जो 'यह छोड़ना वह प्राप्त करना', इस झंझट में पड़ता है वह सिर्फ व्यर्थ का बोझ ढोता है ॥५॥

(३८२५)

४६

विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म । भेदाभेदभ्रम अमंगळ ॥१॥
आइका जी तुम्ही भक्त भागवत । कराल तें हित सत्य करा ॥२॥
कोणाही जीवाचा न घडावा मत्सर । वर्म सर्वेश्वर पूजनाचें ॥३॥
तुका म्हणे एका देहाचे अवयव । सुख दुःख जीव भोग पावे ॥४॥

आइका-सुनो, तुम्ही-तुम, कराल-करोगे, तें-वह, करा-करो, कोणाही-किसी भी, न घडावा-न होवे, पावे-प्राप्त करता है।

(तुकाराम भक्त लोगों को वैष्णव धर्म का मर्म समझाते हैं।)

जगत् विष्णुमय है-यही (यह मानना ही) वैष्णवों का धर्म है। इसलिये अपने-परायेपन का भ्रम ही अमंगल है ॥ १ ॥

हे भक्तजन, मैं आपको भागवत धर्म बताता हूँ। जो कुछ आप कर्म करें वह सत्य और हितकारी ही हो ॥ २ ॥

किसी भी प्राणी के प्रति द्वेषभावना न हो यही सर्वेश्वर पूजन का (सर्वत्र ईश्वर व्याप्त है ऐसी श्रद्धा का) मर्म है ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं जैसे सब अवयव एक ही देह के होते हैं वैसे ही सब जीव एक परमात्मा के अंशरूप या अवयव जैसे ही हैं, और वे (पूर्व संचित कर्मानुसार) सुख-दुःख भोगते हैं ॥ ४ ॥

(३८७६)

५०

नको सांडूं अन्न नको सेवूं वन । चिंतीं नारायण सर्व भोगीं ॥१॥
मातेचिये खांदीं बाळ नेणों भीण । भावना त्या भिन्न मुंडाविया ॥२॥
नको गुंफों भोगीं नको पड़ों त्यागी+ । लावुनी सरे अंगी देवाचिया ॥३॥
तुका म्हणे नको पुसों वेळोवेळां । उपदेश वेगळा उरला नाहीं ॥४॥

सांडूं–छोडो, सेवूं–आश्रय लो, चिंतीं–चिंतन करो, भोगीं–भोगों में, भोग भोगते समय, मातेचिये–माता के, खांदीं–कंधे पर, बाळ–बालक, नेणों–नहीं महसूस करता, भीण–डर, भिन्न–अलगपन की, द्वैत की, मुंडाविया–खतम करें, गुंफों–फँसो, त्यागीं–त्याग में, सरें–खतम करके, पुसों–पूछो, वेगळा–दूसरा, उरला–बाकी बचा।

खाना मत छोड़ो, जंगल का आश्रय भी मत लो, (जो कुछ प्रारब्ध से मिले उन सब को) भोगते समय ईश्वर का चिंतन करो ॥ १ ॥

बालक को डर मालूम नहीं होता, क्योंकि माता के कंधे पर वह रहता है। (बालक स्वयं को माता से अलग नहीं मानता।) उसी प्रकार हम भी ईश्वर से भिन्न न रहें ॥ २ ॥

भोग में फँसो मत और त्याग के झंझट में भी मत पड़ो। सब कुछ भगवान को अर्पण करो ॥ ३ ॥

तुकाराम कहते हैं—बार बार मत पूछो, मेरे पास और कोई उपदेश करने को बाकी नहीं रहा ॥ ४ ॥

(३६०८)

+ भोगें घडे त्याग। त्यागें अंगा येती भोग ॥
ऐसें उफराटें वर्म धर्माअंगीं च अधर्म ॥ तुकाराम (३६०९)—

सूक्तियां

(१) "जें जें कांहीं करितों देवा तें तें सेवा समर्पे" ×

मैं जो कुछ करता हूं वह आपको समर्पित सेवा समझिये।

× × × ×

(२) "जें जें जेथें पावें तें तें समर्पावें सेवे।
सहजपूजा याचीं नावें। गळित अभिमान व्हावें।"+

प्रारब्ध से जो (सुख-दुःख) जहां प्राप्त हो उसे ईश्वर की सेवा में समर्पित करें—इसीका नाम है सहज पूजा। इसके लिये हम अभिमान रहित हों।

× × × ×

(३) "अवघीं रूपें तुझीं देवा। वंदूं भावें करूं सेवा"=

हे भगवान, ये सब आपके ही विभिन्न रूप हैं। हम इनका वंदन करें और इनकी सेवा करें।

× × × ×

(४) "जग अवघें देव। मुख्य उपदेशाची ठेव।¶
आधीं आपण या नासी। तरी उतरी ये कसीं"

सारा जगत देवस्वरूप है—यही मुख्य उपदेश है। हम इस कसौटी पर तभी पूरे उतर सकते हैं जब पहले अपने (अहंता) को समाप्त करें।

× × × ×

(५) "क्षमाशस्त्र जया नराचिया हातीं। दुष्ट तया प्रतिकाय करी"*
क्षमा शास्त्रं करे यस्य। दुर्जनः किं करिष्यति।

× × × ×

(६) "तंववरी तुमचें बळ। जंव आला नाहीं काळ" ÷

तुम्हारा बल जब तक काल नहीं आया है तब तक ही है।

× × × ×

(७) "जें जयासी रुचे तें करीं समोर। सर्वज्ञ उदार मायबाप।
देवा बोल कांहीं नाहीं। तुझा तूचि पाहीं शत्रु सखा"÷

× ३७७४ + ३८५५ = ३७८४ ¶ ३३६४ * ३४२४
÷ ३६६४ ÷ ३६७६

जैसी जिसकी इच्छा होती है वैसा भगवान उसके सामने रखता है। ईश्वर को कोई भी दोष लगाया नहीं जा सकता। तेरा शत्रु तू ही है और तेरा मित्र भी तू ही है।

× × × ×

(८) "नम्र झाला भूतां। तेणें कोंडिलें अनंता"÷

जो भूतमात्र के प्रति नम्र हुआ है उसने मानों अनंत भगवान को ही अपने पास कैद कर लिया है।

× × × ×

(९) "आलें देवाचियां मनां। तेथें कोणाचें चालें ना"@

ईश्वर के मनमें जो आता है उसके संबंध में फिर किसी का कुछ नहीं चलता।

× × × ×

(१०) "एक एका साह्य करुं। अवघे धरुं सुपंथ"×

एक दूसरे की सहायता करके सब सुपंथ पर चलें।

× × × ×

(११) "नाहीं घाटावें लागत। एका शितें कळे भात"=

भात का एक दाना देखना ही काफी है। सारा देखने की जरूरत नहीं।

× × × ×

(१२) "साधु संत येतीं घरां। तोचि दिवाळी दसरा"+

साधु संत घर पर आयें वही दीपावली और दशहरा है।

× × × ×

(१३) "वीर तो कारण। मग होतो साह्य नारायण"÷

हम धैर्य धारण करें तब भगवान सहायता करेगा।

× × × ×

(१४) "खरें बोलें तरी। फुकासाठीं जोडें हरि"❀

सत्य वचन से मुफ्त में ईश्वर प्राप्ति होती है।

× × × ×

(१५) जैसे दावी तैसा राहे। तरि का देव दुरी आहे"†

जैसा हो वैसा ही लोगों के सामने अपने को प्रकट करो, तो ईश्वर क्या दूर है?

÷ २७३७ @ ३२८३ × ३७७८ = ६२० + २३४९
÷ ३७१९ ❀ २७६७ † २८९३

(१६) "भूतदया ज्याचें मनी। त्याचें घरी [illegible]
जिसके मन में भूतदया है उसके घर चक्रपाणि है।

× × × ×

(१७) "भाव तैसे फळ। न चले देवापाशीं बळ"÷
भावना के अनुरूप फल होता है। ईश्वर के पास अन्य बल काम नहीं देता।

× × × ×

(१८) "सुख पाहतां जवापाडें। दुःख पर्वता एवढें"*
सुख जौ के बराबर दिखता है और दुःख पर्वत के बराबर।

× × × ×

(१९) "अनुतापें दोष। जाय न लगतां निमिष"$
पश्चाताप से दोष दूर होने में निमिष भी नहीं लगता।

× × × ×

(२०) "चीत मिले तो सब मिले नहिं तो फोकट संग
पाणी पाथर एक ही कोरन भीगे अंग"

× × × ×

(२१) "आप तरे त्याकी कोण बराई औरनकुं भलो नाव धराई"

° ३२६० ÷ २७७७ * ३६५४ $ २७८०

सहायक ग्रंथ सूची (?) नैमी निमक

१. तुकारामाचा अस्सल गाथा भाग १–२ (मराठी) वि. लि. भावे आर्यभूषण प्रेस, पूना सिटी
२. तुकारामांची सार्थ गाथा–भाग १–२, (मराठी) सं० विष्णु बुवा जोग जगद्धितेच्छु प्रेस, पूना सिटी
३. तुकाराम चरित्र– (मराठी) ले० ल. रा. पांगारकर
४. तुकाराम– (मराठी) ले० रा. ग. हर्षे
५. तुकाराम वचनामृत (मराठी) ले० रा. द. रानडे अध्यात्मक विद्यापीठ, पो० निंबाळ, जि० विजापूर
६. पांच संतकवी– (मराठी) ले० शं गो. तुळठपुळे श्री गणपति संस्थान प्रेस, सांग्लि, जि० द. सतारा
७. संताचा प्रसाद– (मराठी) विनोबा ग्राम सेवा मण्डल, नालवाडी, वर्धा
८. हिंदी को मराठी संतों की देन (हिन्दी) आचार्य विनय मोहन शर्मा विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, ३
९. संत तुकाराम–(हिन्दी), श्री दिवेकर
१०. संतवाणी सुधासार–(हिन्दी) वियोगी हरि
११. उत्तरी भारत की संत परम्परा (हिन्दी) परशुराम चतुर्वेदी
१२. तुकारामाया अभंगां चर्चा (मराठी) वा. व. पटवर्धन तथा ग. ह. केळकर
१३. Life & Teachings of Tukaram–J. F. Edwards & J. Nelson Fraser.
१४. The Poems of Tukaram-Vols. 1,2,3–J. Nelson Fraser and K. B. Marathe.
१५. Two Masters–Jesus & Tukaram– P. R. Bhandarkar.